रामायण-सार

अर्थात्

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत
रामचरित मानसका सार

संग्रहकर्ता

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

*

मुद्रक और प्रकाशक

तेजनारायण वाजपेयी,

कुमार प्रेस,

१०२, मुक्तारामबाबू स्ट्रीट,

कलकत्ता।

—*—

प्रथम संस्करण]

[मूल्य ॥) आने
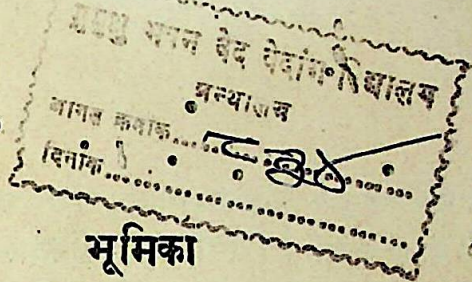
भूमिका

रामायण अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ है। गोस्वामी तुलसीदास जीने इसे लोकभाषामें लिखकर संस्कृत न जाननेवाली जनताका बड़ा उपकार किया है, क्योंकि इसमें केवल रामायणकी कथा ही नहीं है धर्मार्थकाम मोक्षका बड़ा ही सुन्दर विवेचन भी किया गया है। इस ग्रन्थरत्नकी मूल भाषा तो अवधी है, परन्तु जहां तहां इसमें राजपुताने, व्रज, वुन्देलखण्ड, वनारस, मगध और मिथिलाकी वोलियोंका ही नहीं खड़ी या खरी वोलीकी भी पुट दी गयी है। कई ऐसे शब्द भी इसमें दिखाई देते हैं, जो मराठी और वंगलामें तो प्रचलित हैं, पर हिन्दीमें वे त्याज्य कोटिमें चले गये हैं। इसलिये रामायणकी भाषा समझनेमें उन्हें भी विशेष कठिनाई नहीं होती, जिनकी भाषा हिन्दी नहीं है। साहित्यिक दृष्टिसे तो रामायण अपना जोड़ा नहीं रखती, क्योंकि इसमें संस्कृतके माघ काव्यकी भांति उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य तीनो गुण विद्यमान हैं।

रामायण धर्मग्रन्थ है, इस लिये इसमें धर्मका पुनः संस्थापन करने वाले मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके चरित्रोंका वर्णन है। भगवान् रामचन्द्रको गोस्वामीजीने परब्रह्मका अवतार माना है। उन्होंने वालकाण्डमें कहा है :—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगतविनोद।
सो अज प्रेम-भक्तिवश, कौशल्याकी गोद॥

साधारण मनुष्य जो काम नहीं कर सकते, वह विशेष विभूतिवान् पुरुषोंसे ही हो सकता है। ऐसे विशिष्टशक्ति-सम्पन्न पुरुष आजकलकी भाषामें अतिमानुष (Superman) कहाते हैं। ये विगड़ोंको बनाते हैं। मात्स्यन्यायको, जिसमें छोटी मछलीको वड़ी मछली खा जाती है अथवा दुर्बलको सबल सताते हैं, ये अतिमानुष ही दूर करते हैं। इनकी ऊंचाई तक साधारण मनुष्य नहीं पहुंच पाते, इस लिये इन्हें विशेष शक्तिसम्पन्न—ईश्वर समझते हैं। कालान्तरमें ये ईश्वरका अवतार माने और उसी भावसे पूजे जाते हैं।

पूर्ण शक्ति वा ईश्वरत्वकी माप षोडशकला है और श्रीमद्भागवतके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दमें सोलहो कलाएं थीं, इस लिये उनके विषयमें "कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" प्रसिद्ध ही नहीं है, वे पूर्णावतार माने भी जाते हैं। साधारण मनुष्योंमें एक कलाके कुछ अंश होते हैं। श्रीरामचन्द्रमें १२ कलाएं और परशुराममें ४ कलाएं थीं और जब श्रीरामके सामने परशुराम आये, तो उनमें १६ कलाएं हो गयीं और परशुराम साधारण मनुष्य हो गये। परन्तु रामतापनीयोपनिषद्के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी पूर्ण ब्रह्म थे। इस उपनिषद्का ब्रह्माण्ड पुराण की अध्यात्म रामायणसे बड़ा सादृश्य है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि गोस्वामी तुलसीदासजीने इसीके आधारपर अपनी रामायणकी रचना की है।

परमात्मा वा ब्रह्म सर्वव्यापक, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान्, निर्गुण और निर्विकार तथा वाणी, मन और बुद्धिसे परे है। उस तक पहुंचना असम्भवसा है, क्योंकि वेद कहता है कि वहां वाणी नहीं जाती

(न तत्र वाग् गमति), परन्तु वह अनुभवगम्य है। यह अनुभूति शम, दम, तितिक्षा और तपस्यासे हो सकती है। फिर भी इसका निश्चय नहीं है कि अनुभूति हो ही जायगी। इसीसे निर्गुण ब्रह्मकी उपासना दुस्साध्य समझकर सगुण उपासनाका पन्थ चलाया गया। ब्रह्म अकल्पनीय है, इसलिये साधारण मनुष्यके ध्यानमें ब्रह्मका जो स्वरूप आ सके, वही सगुण ब्रह्मकी उपासनाका आधार बनाया गया। ब्रह्म त्रिगुणातीत है अर्थात सत्व, रज और तमसे परे है। पर सगुण उपासनामें सत्व, रज और तम किसी एक गुणकी प्रतीक रखी जाती है। सत्व, रज और तमसे विष्णु, ब्रह्मा और महेश त्रिमूर्तिकी कल्पना की गयी है। सांख्यके पुरुष और प्रकृति अथवा वेदान्तके ब्रह्म और माया के अनुसार विष्णुको पुरुष तो लक्ष्मीको प्रकृति माना है। इसीप्रकार ब्रह्मा और सरस्वती तथा शंकर और पार्वतीको पुरुष प्रकृति समझना चाहिये। जहां कहीं मायाकी प्रबलता दिखायी गयी है, वहां माया ही सबको नचाती बतायी गयी है। लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिवकी शक्ति कहाती हैं।

परमेश्वर वा ब्रह्म एक ही है और कार्य, शक्ति तथा अधिकारसे उसके अनेक नाम हैं। जो ब्रह्मा है, वही विष्णु है और जो विष्णु है, वही महेश्वर है। ऋग्वेदका (१।१६४।४६) मंत्र बड़ा प्रसिद्ध है। इसमें कहा गया है "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः" (परमेश्वर एक ही है, पर विद्वान् उसे अनेक नामोंसे पुकारते हैं यथा अग्नि, यम और मातरिश्वान्।) इसी प्रकार शुक्ल यजुर्वेदका (३२।१) मंत्र है कि "तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्

ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥" अर्थात् वही अग्नि, वह आदित्य, वही वायु वही चन्द्रमा, वह शुक्र, वह ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है। अथर्ववेदके (१३।४।४५) मंत्रमें बताया गया है "सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। सोऽग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः॥ अर्थात् वह अर्यमा, वह वरुण, वह रुद्र, वह महादेव, वह अग्नि, वही सूर्य और वही महायम है।

गोस्वामी तुलसीदास बड़े निर्भीक थे। वे जो सच समझते थे, वही कहते थे। यद्यपि वे रामानन्दी वैष्णव थे, तथापि साम्प्रदायिक आग्रह उनमें न था। वे रामभक्तिके आग्रही अवश्य थे, परन्तु अन्य देवताओंके विरोधी न थे। महाकवि कालिदासके समयमें शैवों और वैष्णवोंमें जैसा द्वेष और कलह था, वैसा ही तुलसीदासजीके समयमें भी था और जिस प्रकार कालिदासने इसकी परवा न कर अपने "रघुवंश"के आरम्भमें जगतके माता पिता पार्वती परमेश्वरकी वन्दना की है, उसी प्रकार गोसांईजीने भी श्रद्धा विश्वासरूपी भवानीशंकरकी वन्दना की है। परन्तु तुलसीदासजी कालिदाससे बहुत ऊंचे थे, क्योंकि इन्होंने तो "कुमारसम्भव" में जगत्के माता पिताके श्रृङ्गारका भी वर्णन किया है, पर गोस्वामीजी इस अनौचित्यके पास तक नहीं फटके हैं, बल्कि कालिदासको प्रकारान्तरसे

जगत मातु पितु शम्भु भवानी। तेहि श्रृङ्गार न कहौं बखानी॥

कहकर फटकारा ही है।

गोसाईं जीने रामायणमें जहां तहां शिव पार्वतीकी चर्चा की है और इस ढंगसे की है कि राम और शिवमें कोई भेद नहीं है। बालकाण्डमें वे लिखते हैं :—

शिव पदकमल जिनहिं रति नाहीं । रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं ॥
विनु छल विश्वनाथपद नेहू । रामभक्तकर लक्षण एहू ॥

उन्होंने लंकाकाण्डमें तो श्रीरामसे ही कहलवाया है :—

शिवद्रोही मम दास कहावै । सो नर सपनेहु मोहिं न भावै ॥

शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महं वास ॥

यह गोसाईंजीका ही हियाव था कि अपने सम्प्रदायवालोंकी प्रसन्नता अप्रसन्नताका विचार न कर जो उचित समझा, वही लिखा। जो लोग यह समझते हैं कि उन्होंने लोकप्रियताके लिये ऐसा किया है, वे तुलसीदासजीको नहीं समझते और उन्हें भी अपने समान संस्कीर्ण साम्प्रदायिक सिद्ध करना चाहते हैं।

अवतारी पुरुषका कार्य धर्मकी ग्लानि और अधर्मका उत्थान दूर कर धर्मकी स्थापना और अधर्मका नाश करना है। वह धर्म क्या है जिसकी ग्लानि मिटानेके लिये अवतारका प्रयोजन होता है? महाभारतमें बताया गया है कि अहिंसा, उन्नति और रक्षा जिन कामोंसे होती है, वे धर्म हैं। इससे सिद्ध है कि जिनसे इनमें बाधा पड़ती है, वे अधर्म हैं। यहां कुछ अल्पज्ञ मनुष्य ऐसी शंका करते हैं कि जब अहिंसा धर्म है, तब श्रीरामचन्द्रने अवतार लेकर रावणादिका वध करके हिंसा की या अहिंसा। कुछ तो इनसे भी आगे बढ़ जाते हैं और कहते हैं कि श्रीरामने यह हिंसा कर राक्षसी कर्म किया है! ऐसे मनुष्य क्रोध नहीं, दयाके पात्र हैं, क्योंकि तोतेकी तरह इन्होंने शब्द ही रट लिये हैं, अर्थोंका ज्ञान इन्हें नहीं है।

अहिंसाका अर्थ अपीड़न है। जो दुष्ट जन सज्जनोंका पीड़न क
हैं, उनसे इनकी रक्षा तभी हो सकती है, जब उनकी विषकी द
निकाल ली जाय । इसके लिये दुष्टोंका संहार भी कर्त्तव्य है
महाभारतमें कहा गया है कि अवध्यको वध न करनेमें जितना दोष
वध्यको वध न करनेमें भी उतना ही हैं, इसलिये बड़ी हिंसा रोकने
लिये जो थोड़ी हिंसा की जाती है, वह भी अहिंसा ही ह । इसीक
ध्यानमें रख मनुस्मृतिमें कहा गया है कि गुरु, बालक, वृद्ध व
विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो, पर यदि आततायी हो औ
आततायीपन करनेके लिये आता हो तो बिना विचारे उसे
मार डालना चाहिये । यही मत कात्यायनका है । परन्तु
गालव और वृहस्पति इससे भी आगे बढ़ गये हैं। वे कहते हैं
कि आततायी बालक, चाहे वेदपाठी और कुलीन हो क्यों न हो, उसे
न मारनेवाला ही भ्रूण हत्यारा होता है, मारनेवाला नहीं। आग लगाने
वाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारने आनेवाले तथा धन खेत औ
स्त्रीका हरण करनेवालेको वसिष्ठस्मृतिमें आततायी कहा हैं।

इस विवेचनसे रावण आततायी होनेके कारण वध्य था औ
श्रीरामचन्द्रजीने उसका वध करके बड़ी भारी अहिंसाकी स्थापना की
हैं । "अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्" (अक्रोधसे क्रोधको
और दुष्टको साधुतासे जीतना चाहिये) जैसी बातें कहने और सुननेमें
अच्छी लगती हैं, पर ये व्यावहारिक नहीं हैं। यही नहीं, इनसे कायर
ता और अकर्मण्यताकी सृष्टि होती हैं। गोसांईजीको इसका पत
था, इसीलिये उन्होंने अरण्यकाण्डमें खरदूषणके सन्धिप्रस्तावके उत्त
में श्रीरामचन्द्रसे कहलवाया हैं :—

रण चढ़ि करिय कपट चतुराई । रिपुपर कृपा परम कदराई ॥

रामायण अद्भुत काव्य है, क्योंकि इसमें भगवद्भक्तिकी धारा ही नहीं बह रही है, बल्कि जो सब बातें मनुष्यको जाननी चाहिये, उन्हें वह रामायणसे जान सकता है। इस दृष्टिसे वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य शास्त्र है। पुत्रका माता पिताके प्रति, भाईका भाईके प्रति और स्त्रीका पतिके प्रति तथा पतिका स्त्रोके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिये यह मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण और सीताके चरित्रोंसे जाना जाता है। बहुपत्नी-विवाहकी बुराइयाँ कैकेयीके दृष्टान्तसे स्पष्ट हो जाती हैं। श्रीरामका एकपत्नीव्रत आदर्श है। रामराज्यका प्रयोग आज भी सुराज्यके लिये होता है, क्योंकि श्रीरामकी प्रजा ही राजभक्त न थी, बल्कि वे भी प्रजाभक्त थे। प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध वे कोई काम नहीं करते थे और लोकमतका आदर करते थे। शत्रुओंके प्रति भी उनका व्यवहार अच्छा था। उन्होंने वालीका तो वध किया, पर उसके बेटे अंगदको पम्पापुरीका युवराज बना दिया। रावणका भाई बेटों सहित संहार किया, पर उसीके एक भाई विभीषणको लंकाके सिंहासनपर बैठा दिया। ऐसी सन्धि किसीसे नहीं की, जिसके संशोधनकी आवश्यकता प्रतीत हुई हो। रामायणमें कामादि रिपुओंसे हानिके उदाहरण भरे पड़े हैं। कामके कारण दशरथको पुत्र-वियोगमें प्राण देना पड़ा और रावणको सकुल यमपुरी जाना पड़ा। क्रोधके कारण परशुरामको जनकपुरमें भरी सभामें नीचा देखना पड़ा तथा मृगयाके फेरमें श्रीरामको कनकमृगके पीछे दौड़ना पड़ा जिसके फलस्वरूप सीताहरण हुआ।

अहिंसाका अर्थ अपीड़न है। जो दुष्ट जन सज्जनोंका पीड़न करते हैं, उनसे इनकी रक्षा तभी हो सकती है, जब उनकी विषकी थैली निकाल ली जाय। इसके लिये दुष्टोंका संहार भी कर्त्तव्य है। महाभारतमें कहा गया है कि अवध्यको वध न करनेमें जितना दोष है, वध्यको वध न करनेमें भी उतना ही है, इसलिये बड़ी हिंसा रोकनेके लिये जो थोड़ी हिंसा की जाती है, वह भी अहिंसा ही है। इसीको ध्यानमें रख मनुस्मृतिमें कहा गया है कि गुरु, बालक, वृद्ध या विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो, पर यदि आततायी हो और आततायीपन करनेके लिये आता हो तो बिना विचारे उसे मार डालना चाहिये। यही मत कात्यायनका है। परन्तु गालव और बृहस्पति इससे भी आगे बढ़ गये हैं। वे कहते हैं कि आततायी बालक, चाहे वेदपाठी और कुलीन हो क्यों न हो, उसे न मारनेवाला ही भ्रूण हत्यारा होता है, मारनेवाला नहीं। आग लगानेवाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारने आनेवाले तथा धन खेत और स्त्रीका हरण करनेवालेको वसिष्ठस्मृतिमें आततायी कहा है।

इस विवेचनसे रावण आततायी होनेके कारण वध्य था और श्रीरामचन्द्रजीने उसका वध करके बड़ी भारी अहिंसाकी स्थापना की है। "अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्" (अक्रोधसे क्रोधको और दुष्टको साधुतासे जीतना चाहिये) जैसी बातें कहने और सुननेमें अच्छी लगती हैं, पर ये व्यावहारिक नहीं हैं। यही नहीं, इनसे कायरता और अकर्मण्यताकी सृष्टि होती है। गोसांईजीको इसका पता था, इसीलिये उन्होंने अरण्यकाण्डमें खरदूषणके सन्धिप्रस्तावके उत्तरमें श्रीरामचन्द्रसे कहलवाया है :—

रण चढ़ि करिय कपट चतुराई । रिपुपर कृपा परम कदराई ॥

रामायण अद्भुत काव्य है, क्योंकि इसमें भगवद्भक्तिकी धारा ही नहीं वह रही है, वल्कि जो सव वातें मनुष्यको जाननी चाहिये, उन्हें वह रामायणसे जान सकता है। इस दृष्टिसे वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य शास्त्र है। पुत्रका माता पिताके प्रति, भाईका भाईके प्रति और स्त्रीका पतिके प्रति तथा पतिका स्त्रीके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिये यह मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण और सीताके चरित्रोंसे जाना जाता है। वहुपत्नी-विवाहको वुराइयाँ कैकेयीके दृष्टान्तसे स्पष्ट हो जाती हैं। श्रीरामका एकपत्नीव्रत आदर्श है । रामराज्यका प्रयोग आज भी सुराज्यके लिये होता है, क्योंकि श्रीरामकी प्रजा ही राजभक्त न थी, वल्कि वे भी प्रजाभक्त थे। प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध वे कोई काम नहीं करते थे और लोकमतका आदर करते थे। शत्रुओंके प्रति भी उनका व्यवहार अच्छा था। उन्होंने वालीका तो वध किया, पर उसके वेटे अंगदको पम्पापुरीका युवराज वना दिया। रावणका भाई वेटों सहित संहार किया, पर उसीके एक भाई विभीषणको लंकाके सिंहासनपर वैठा दिया । ऐसी सन्धि किसीसे नहीं की, जिसके संशोधनकी आवश्यकता प्रतीत हुई हो। रामायणमें कामादि रिपुओंसे हानिके उदाहरण भरे पड़े हैं। कामके कारण दशरथको पुत्र-वियोगमें प्राण देना पड़ा और रावणको सकुल यमपुरी जाना पड़ा । क्रोधके कारण परशुरामको जनकपुरमें भरी सभामें नीचा देखना पड़ा तथा मृगयाके फेरमें श्रीरामको कनकमृगके पीछे दौड़ना पड़ा जिसके फलस्वरूप सीताहरण हुआ।

॥

संस्कृत साहित्यमें श्रीमद्भगवद्गीताका जो स्थान है, हिन्दीमें वही तुलसीकृत रामायणका है। हिन्दीमें होनेके कारण करोड़ों मनुष्य इससे लाभ उठाते हैं। इसे ज्ञानी विद्वान् और भक्तजन ही नहीं, अक्षरों से परिचित साधारण मनुष्य भी पढ़ते हैं। परन्तु रामायण बड़ी पुस्तक है और एक सप्ताहसे कममें समाप्त नहीं हो सकती, इसलिये इस पुस्तकमें उसका सार निकाल कर रख दिया गया है और इसका पूरा ध्यान रखा गया है कि कहीं रगपर नश्तर न लग जाय। कथा का सिलसिला टूटने नहीं पाया और साधारण धर्म, राजधर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यादि सम्बन्धी विचार भी छूटने नहीं पाये हैं।

अन्तमें हिन्दू हितोंके हिमायती और हिन्दू संस्कृतिके प्रबल पक्षपाती श्रीमान् बाबू जुगुलकिशोरजी बिड़लाको धन्यवाद है जिनकी प्रेरणा और अर्थव्ययसे यह रामायण-सार प्रकाशित हो रहा है।

कलकत्ता:
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी,
सं० १९९१

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी।

विषय-सूची

—※०※—

ब्रह्मदेवकृत विष्णुस्तुति

जय जय सुरनायक जन-सुखदायक प्रनतपाल भगवन्ता।
गोद्विज-हितकारी जय असुरारी सिन्धु-सुता-प्रियकन्ता॥
पालन-सुरधरनी अद्भुत—करनी मर्म न जानै कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करौ अनुग्रह सोई॥१॥
जय जय अबिनासी सब-घटवासी व्यापक परमानन्दा।
अभिगति गोतीता चरितपुनीता माया—रहित मुकुन्दा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी विगत-मोह मुनिवृन्दा।
निसिवासर ध्यावहिं हरिगुन गावहिं जयति सच्चिदानन्दा॥२॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा॥
जो भवभयभंजन मुनि-मन-रंजन गंजन-विपति-वरूथा।
मन बच क्रम बानी छाँड़ि सयानी सकल-सरन-सुरयूथा॥३॥
शारद श्रुतिशेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारै द्रवौ सो श्रीभगवाना॥
भववारिधिमन्दर सबविधि सुन्दर गुण—मन्दिर सुख-पुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥४॥

ब्रह्माकृत श्रीरामस्तुतिः

जय राम सदा सुखधाम हरे, रघुनायक सायक चाप धरे।
भववारण-दारण-सिंह प्रभो, गुणसागर नागर नाथ विभो ॥१॥
तनुकाम अनेक अनूप छवी, गुण गावत सिद्ध मुनीन्द्र कवी।
यशपावन रावण-नाग-महा, खगनाथ यथा करि कोप गहा ॥२॥
जनरंजन भंजनशोकभयं, गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं।
अवतार उदार अपार गुणं, महिभार विभंजन ज्ञानघनं ॥३॥
अज व्यापक एक अनादि सदा, करुणाकर राम नमामि मुदा।
रघुवंशविभूषण दूषण हा, कृतभूप विभीषण दीन रहा ॥४॥
गुणज्ञान-निधान अमानमजं, नित राम नमामि विभुं विरजं।
भुजदण्ड प्रचण्ड प्रतापबलं, खलवृन्दनिकन्द महाकुशलं ॥५॥
बिनु कारण दीनदयालुहितं, छबिधाम नमामि रमासहितं।
भवतारण कारण कार्यपरं, मनसंभव दारुणदोषहरं ॥६॥
शर–चाप—मनोहर-तूणधरं, जलजारुणलोचन भूप बरं।
सुखमन्दिर सुन्दर श्रीरमणं, मदमार-महा—ममताशमनं ॥७॥
अनवद्य अखण्ड न गोचर सो, सबरूप सदा सब होय न सो।
इत वेद वदन्त न दन्तकथा, रवि आतप भिन्नमभिन्न यथा ॥८॥
कृतकृत्य विभो सब वानर ये, निरखन्ति तवानन सादर ये।
धिक् जीवन देव शरीर हरे, सब भक्ति विना भव भूलि परे ॥९॥
अब दीनदयालु दया करिये, मति मोरि विभेदकरी हरिये।
जेहि ते विपरीत कृपा करिये, दुखमें सुख मानि सुखी चरिये॥१०॥
खलखंडन मंडन रक्षक्षमा, पदपंकज सेवित शम्भु उमा।
नृपनायक दे वरदानमिदं, चरणाम्बुजप्रेम सदा शुभदं ॥११॥

इन्द्रकृत श्रीरामस्तुति

जय राम शोभाधाम, दायकप्रणतविश्राम ।
धृततूणवर शरचाप, भुजदण्ड-प्रबल-प्रताप ॥१॥
जय दूषणारि खरारि, मर्दन निशाचर-भारि ।
यह दुष्ट मारेहु नाथ, भये देव सकल सनाथ॥२॥
जय हरण-धरणीभार, महिमा अपार उदार ।
जय रावणारि कृपाल, किये यातुधान विहाल ॥३॥
लंकेश अति बल गर्व, किये वश्य सुरगन्धर्व ।
मुनि-सिद्ध-नर-खग-नाग, हठि पन्थ सबके लाग ॥४॥
परद्रोहरत अतिदुष्ट, पायो सो फल पापिष्ट ।
अब सुनहु दीनदयालु, राजीवनयन विशाल ॥५॥
मोहिं रहा अति अभिमान, नहिं कोउ मोहिं समान ।
अब देखि प्रभुपदकंज, गतमानप्रद-दुखपुंज ॥६॥
कोउ ब्रह्म निर्गुण ध्याव, अव्यक्त जेहिं श्रुति गाव ।
मोहिं भाव कोशलभूप, श्रीराम सगुण स्वरूप ॥७॥
वैदेहि अनुज समेत, मम हृदय करहु निकेत ।
मोहिं जानिये निज दास, दै भक्ति रमानिवास ॥८॥
दै भक्ति रमानिवास त्रासहरण शरण सुखदायकं ।
सुखधाम राम नमामि काम अनेकछबि रघुनायकं ॥९॥
सुरवृन्दरंजन द्वन्द्वभंजन मनुज तनु अतुलितं बलं ।
ब्रह्मादिशंकरसेव्य राम नमामि करुणा कोमलं ॥१०॥
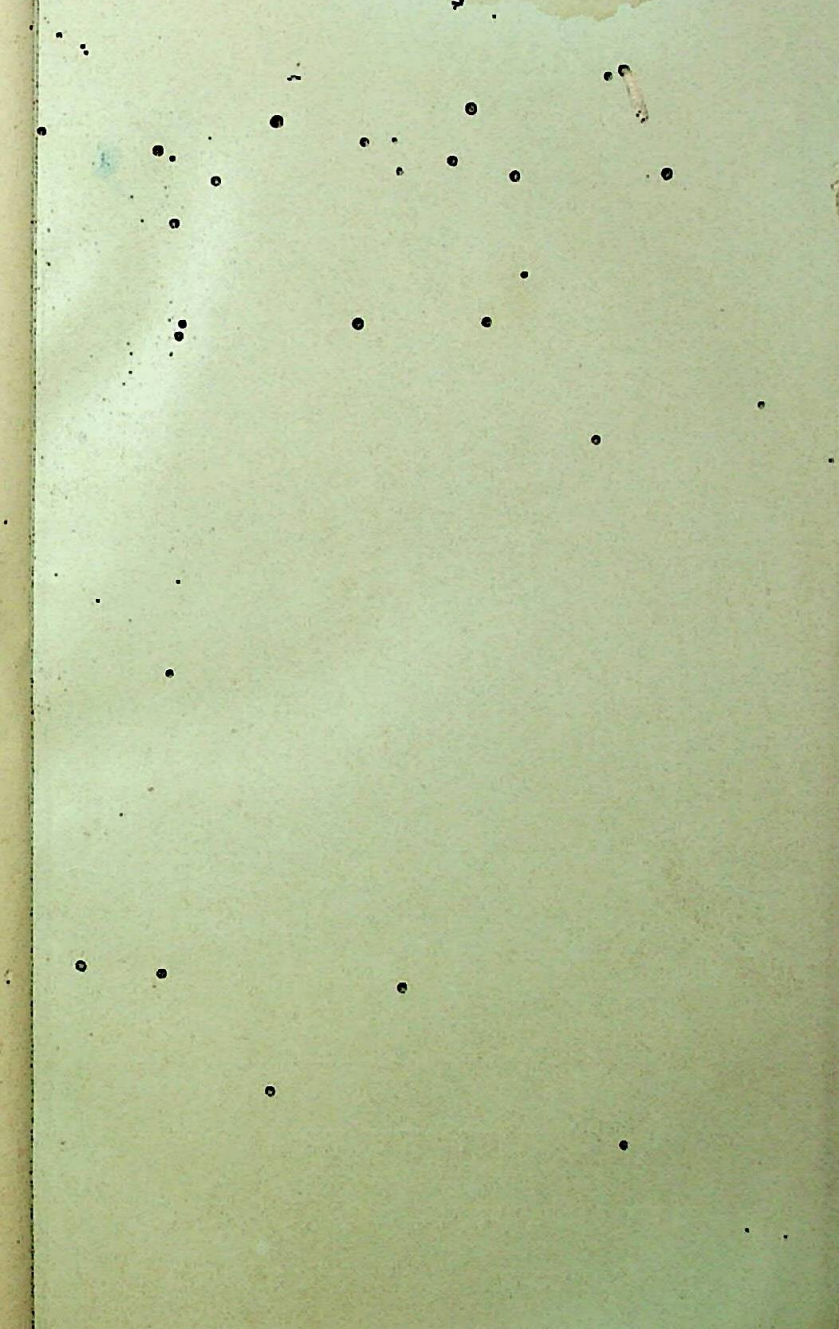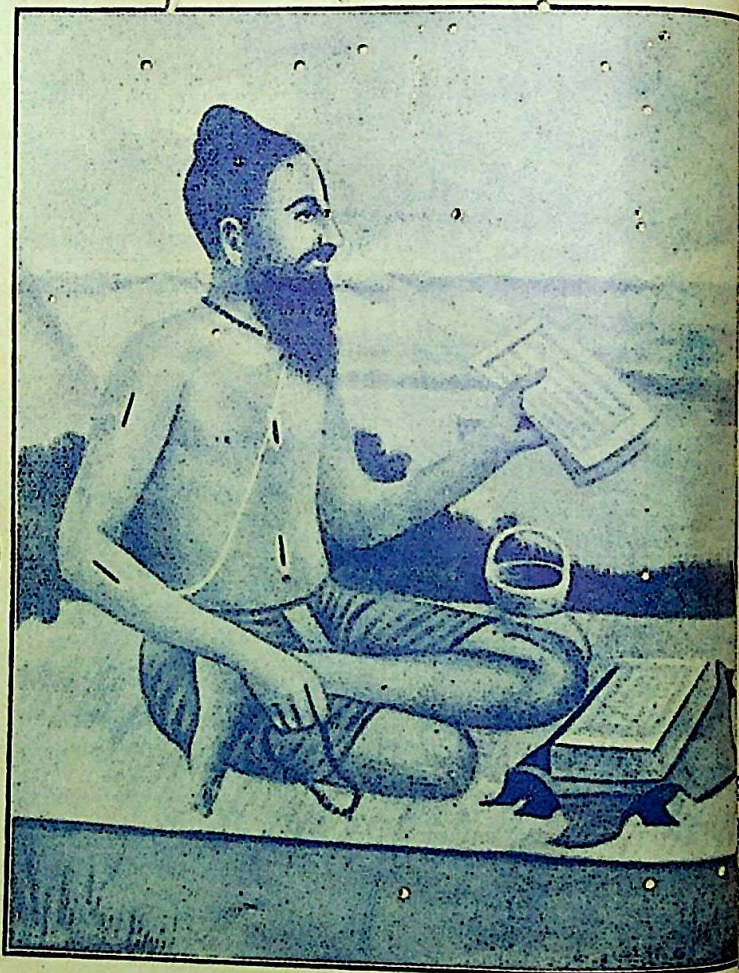
श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी

राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जो चाहसि उजियार॥

श्रीगणेशाय नमः

अथ बालकाण्ड
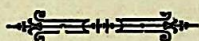
मंगलाचरण

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर-वदन।
करहु अनुग्रह सोइ, वुद्धिराशि शुभगुण-सदन॥
मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर-गहन।
जासु कृपा सु दयाल, द्रवौ सकल कलिमल-दहन॥
वन्दौं गुरुपद-कंज, कृपा-सिन्धु नररूप-हरि।
महामोह-तम-पुंज, जासु वचन रविकर-निकर॥

सन्तसमाजकी प्रशंसा

ुजन समाज सकल गुणखानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुवानी॥
ुद-मंगल—मय संत समाजू। जौं जग ज़ंगम तीरथराजू॥
ाम भक्ति जहं सुरसरि धारा। सरस्वति ब्रह्मविचार प्रचारा॥
ंधि निषेधमय कलिमल हरणी। कर्म कथा रवि नंदिनि वरणी॥
रिहर-कथा विराजत वेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
ट विश्वास अचल निजधर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा॥
ावहिं सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन-कलेशा॥
कथ अलौलिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहि जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चार फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥
मज्जन फल देखिय तत्काला। काक होइ पिक वकहु मराला॥
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहां जेइ पाई॥
सो जानै सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥
विन सतसंग विवेक न होई। राम कृपा विन सुलभ न सोई॥
सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइफल सिधि सब साधनफूला॥
शठ सुधरहिं सत्संगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥
विधिवश सुजन कुसंगति परहीं। फणिमणि सम निजगुण अनुसरहीं॥
वन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोय॥
अंजलि गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोय॥
विधि हरिहर कवि कोविद वानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मोसन कहि जात न कैसे। शाक वणिक मणि गुणगण जैसे॥

खलों की वन्दना

बहुरि वंदि खल गण सति भाये। जे विनु काज दाहिने बांये॥
परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे॥
हरिहर—यश राकेश राहुसे। पर अकाज भट सहसबाहुसे॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मन माखी॥
तेज कृशानु रोष महिषेशा। अघ अवगुण धन धनिक धनेशा॥
उदय केतु सम हित सबहीके। कुम्भकरण सम सोवत नीके॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिमउपल कृषी दल गरहीं॥

वन्दौं खल जस शेष सरोषा। सहस बदन बरनै परदोषा॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहस दश काना॥
बहुरि शक्र सम विनवौं तेही। संतत सुरा नीक हित जेही॥
बचन वज्र जेंहि सदा पियारा। सहस नयन परदोष निहारा॥

उदासीन-अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति॥
जानि पाणि युग जोरि करि, विनती करौं सप्रीति॥

सन्तअसन्तों का विवेचन

वन्दौं संत असज्जन-चरणा। दुःख-प्रद उभय बीच कछु वरणा॥
विछुरत एक प्राण हरि लेहीं। मिलत एक दारुण दुख देहीं॥
उपजहिं एक संग जलमाहीं। जलज जोंक जिमि गुण विलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुयश अपलोक विभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि व्याधू॥
गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच॥
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥

खल गह अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहिते कछु गुणदोष बखाने। संग्रह त्याग न विनु पहिचाने॥
भलेउ पोच सब विधि उपजाये। गनि गुण दोष वेद विलगाये॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंच गुण अवगुण साना॥
दुख सुख पाप पुण्य दिनराती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊंच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू॥

माया ब्रह्म जीव जगदीशा। लक्षि अलक्षि रंक अवनीशा॥
काशी मग सुरसरि कर्मनाशा। मरु मालव महिदेव गवाशा॥
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा। निगमागम गुण दोष विभागा॥
जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन करतार॥
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥
अस विवेक जब देहि विधाता। तब तजि दोष गुणहिं मन राता॥
काल सुभाव कर्म बरिआई। भलेउ प्रकृति वश चूक भलाई॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लैहीं। दलि दुख दोष विमल यश देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटहिं न मलिन सुभाव अभंगू॥
खर सुवेश जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजियत तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निवाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥
किये सुवेश साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू॥

सुसंगके गुण और कुसंगके दोष

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू॥
गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचइ मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन शुक्र सारी। सुमिरहिं राम देहिं गण गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुराण मंजुमसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन-दाता॥
ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग॥
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग॥
सम प्रकाश तम पाख दुहुं, नाम भेद विधि कीन्ह॥
शशि पोषक शोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह॥

जग बहु नर सरितासम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सुकृति सिन्धु सम कोई । देखि पूर विधु बाढ़हिं जोई ॥
आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव नभ जलथल वासी ॥
सिया राममय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि युग पानी ॥
धूमहु तजै सहज करुआई । अगर प्रसंग सुगंध बसाई ॥
भणित भदेश वस्तु भलि वरणी । राम कथा जग मंगल करणी ॥

प्रिय लागहिं अति सबहिं मम, भणित राम यश संग ।
दारु विचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय प्रसंग ॥

कलियुगके लोग

जे जनमे कलिकाल कराला । करतब वायस वेष मराला ॥
चलत कुपंथ वेद मग छांड़े । कपट कलेवर कलिमल भांड़े ॥
वंचक भक्त कहाइ रामके । किंकर कंचन कोह कामके ॥
तिनमहं प्रथम रेख जग मोरी । धृक धर्म-ध्वज धंधक धोरी ॥

वन्दना

पुनि बन्दौं शारद सुर सरिता । युगुल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका । कहत सुनत इक हर अविवेका ॥
गुरु पितु मातु महेश भवानी । प्रणवौं दीनबंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सियपीके । हित निरुपधिसवविधि तुलसीके ॥

गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दौं सीता—राम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥

नाम और नामी

समुझत सरस नाम अरु नामी । प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी ॥

नाम रूप दोउ ईश उपाधी । अकथ अनादिसुसामुझि साधी
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुणभेद समुझि हैं साधू
देखिय रूप नाम आधीना । रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना
रूप विशेष नाम विनु जाने । करतलगत न परहिं पहिचाने
सुमिरिय नाम रूपविनु देखे । आवत हृदय सनेह विशेखे
नाम रूप गति अकथ कहानी । समुझत सुखद न परहि बखानी
अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी
अगुण सगुण दोउ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा
मोरे मन बड़ नाम दुहू ते । किय जेहियुगनिजवसनिजबूते

याज्ञवल्क्यसे भरद्वाजका प्रश्न

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । जिनहिं राम पद अति अनुरागा
ताप सशम—दम—दया—निधाना । परमारथ पथ परम सुजाना
माघ मकरगत रवि जब होई । तीरथ पतिहिं आव सब कोई
एक बार भरि मकर नहाये । सब मुनीश आश्रमनि सिधाये
याज्ञवल्क मुनि परम विवेकी । भरद्वाज राखेउ पद टेकी
सादर चरण सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे
करि पूजा मुनि सुजस बखानी । बोले अति पुनीत मृदुबानी

संत कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुराण जो गाव ।
होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव ॥

अस विचार प्रगटौं निज मोहू । हरहु नाथ करि जनपर छोहू
राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुराण उपनिषद गावा
राम कवन प्रभु पूछौं तोहीं । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोहीं

एक राम अवधेश कुमारा। तिनकर चरित विदित संसारा॥
नारि विरह दुख सहेउ अपारा। भयउ रोष रण रावण मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि॥
सत्य-धाम सर्वज्ञ तुम, कहहु विवेक विचारि॥

उमाशम्भु संवाद

कहौं सो मति अनुहारि अब, उमा शम्भु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जिमि, सुनि मुनि मिटहिं विषाद॥
जटा मुकट सुरसरित सिर, लोचन नलिन विशाल।
नीलकंठ लावण्यनिधि, सोह बाल विधु भाल॥
बैठे सोह काम-रिपु कैसे। धरे शरीर शांत रस जैसे॥
पारवती भल अवसर जानी। गईं शंभु पहँ मातु भवानी॥
जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। वाम भाग आसन हर दीन्हा॥
पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहंसि उमा बोली प्रिय बानी॥
विश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद-पंकज सेवा॥
जो मोपर प्रसन्न सुख-रासी। जानिय सत्य मोहिं निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना॥
राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुण अलखगति कोई॥

निर्गुण और सगुण ब्रह्म

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज सोई। भक्त प्रेम वस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तिमि किमि कहिय विमोह प्रसंगा॥
राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहि तहँ मोह निशा लव लेशा॥

सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥
हरष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेश पुराना॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश--निधि, प्रकट परावर--नाथ।
रघुकुलमणि सोइ स्वामि मम, कहि शिव नायउ माथ॥
निज भ्रम समुझहिं नहिं अज्ञानी। प्रभुपर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
यथा गगन घन पटल निहारी। झंपेउ भानु कहहिं कुविचारी॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाये। प्रकट जुगल ससि तेहिके भाये॥
उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥
जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ज्ञान--गुण--धामू॥
जासु सत्यताते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महं भास जिमि, यथा भानु--कर वारि।
यदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥
यहि विधि जग हरि आश्रित रहई। यदपि असत्य देत दुख अहई॥
ज्यों सपने सिर काटै कोई। विनु जागे दुख दूर न होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥
विनु पद चलै सुनै विनु काना। कर विनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन--रहित सकल रस भोगी। विनु वानी वक्ता बड़ योगी॥
तनु विनु परस नयन विनु देषा। ग्रहै घ्राण विनु वास अशेषा॥
अस सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं वरनी॥

जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ॥
सोइ दशरथ सुत भक्त-हित, कोशल पति भगवान ॥

रामावतारके कारण

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उर पुर वासी ॥
नाथ धरेउ नर--तनु केहि हेतू । मोहि समुझाय कहहु वृषकेतू ॥
उमा--वचन सुनि परम विनीता । राम कथा--पर प्रीति पुनीता ॥
हिय हरषे कामारि तब, शंकर सहज सुजान ।
बहु विधि उमहिं प्रशंसि पुनि, बोले कृपा--निधान ॥
सुनु शुभ कथा भवानि, राम चरित मानस विमल ।
कहा भुशुंडि बखानि, सुना विहंग--नायक गरुड़ ॥
सोइ संवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब ।
सुनहु राम--अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ ॥
जब जब होइ धर्मकी हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरणी । सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा । हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्हि, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहिं विशद यश, राम--जन्म--कर हेतु ॥
सोइ यश गाय भक्त भव तरहीं । कृपा--सिन्धु जनहित तनु धरहीं ॥
राम--जन्मके हेतु अनेका । परम विचित्र एक ते एका ।
जन्म एक दुइ कहौं बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥

रावणादिके जन्म

विश्वविदित एक केकय देशू । सत्यकेतु तहँ बसै नरेशू ॥

तेहिके भये युगुल सुत वीरा। सब गुण धाम महा रण धीरा॥
राजधानि जेठे सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहिं अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥
नृपहित-कारक सचिव सुजाना। नाम धर्मरुचि शुक्र समाना॥

भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत विधाता वाम।
धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्याल सम दाम॥

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयेउ निशाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदण्डा। रावन नाम वीर वरिवंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयेउ सो कुम्भकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धर्म--रुचि जासू। भयेउ विमात्र बन्धु लघु तासू॥
नाम विभीषण जेहि जग जाना। विष्णु--भक्त विज्ञान--निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भये निशाचर घोर घनेरे॥
मयतनया मन्दोदरि नामा। परम सुन्दरी नारि ललामा॥
सोइ मय दीन रावणहिं आनी। भई सो जातुधान--पति--रानी॥
गिरि त्रिकूट एक सिन्धु मंझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानव बहुरि संवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥
भोगवती जस अहि--कुल वासा। अमरापति जस शक्र निवासा॥
तिन्हते अधिक रम्य अति वंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका॥

खाई सिन्धु गंभीर अति, चारिउ दिशि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव॥
भुज बल विश्वहिं वश्य कर, राखेसि कोउ न स्वतंत्र।
मंडलीक महि रावन, राज करै निज मंत्र॥

वारिदनाद जेठ सुत तासू। भटमँह प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होई रण सन्मुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई॥
वरनि न जाइ अनोति, घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसापर अति प्रीति, तिनके पापन कवन मिति॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरी। जे लंपट परधन परनारी॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुनसों करवावहिं सेवा॥
जिनके अस आचरन भवानी। ते जानेउ निशिचर सम प्रानी॥

पृथ्वीकी गुहार ओर विष्णुका आश्वासन

अतिशय देखि धर्मकी हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोहीं। जस मोहिं गरू एक पर--द्रोही॥
धेनुरूप धरि हृदय विचारी। गई तहां जहं सुर मुनि झारी॥
धरनि धरहु मन धीर, कहि विरंचि हरिपद सुमिरि।
जानत जनकी पीर, प्रभु भंजहिं दारुन विपति॥
वैठे सुर सब करहिं विचारा। कहं पाइय प्रभु करिय पुकारा॥
तेहि समाज गिरजा मैं रहेहूं। अवसर पाइ वचन एक कहेहूं॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमते प्रगट होहिं मैं जाना॥
देश काल दिसि विदिशिहु माहीं। कहहु सो कहां जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित विरागी। प्रेमते प्रगट होत जिमि आगी॥
मोर वचन सबके मन माना। साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना॥
सुनि विरंचि मन हर्ष तनु, पुलक नयन बह नीर।
अस्तुति करि अज जोरिकर, सावधान मतिधीर॥
जानि भयातुर भूमि सुर, वचन समेत सनेह।
गगन--गिरा गम्भीर भइ, हरन--शोक--सन्देह॥

जनि डरपहु मुनि सिद्धसुरेशा। तुमहिं लागि धरिहौं नरभेशा
कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब वर दीन्हा
तिनके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई
हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई
गगन ब्रह्म बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना

कथाका आरम्भ

अवधपुरी रघुकुल मणि राऊ। वेद विदित तेहि दशरथ नाऊ
धर्म--धुरंधर गुण--निधि ज्ञानी। हृदय भक्ति प्रति सारंग--पानी
एक वार भूपति--मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं
गुरु गृह गये तुरत महिपाला। चरण लागि करि विनय विशाला
नृप सुख दुख सब गुरुहिं सुनायउ। कहि बशिष्ठ बहुविधि समुझायउ
धरहु धीर होइहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भक्त--भय हारी
शृङ्गी ऋषिहिं वशिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा

रामजन्म

नवमी तिथि मधुमास पुनीता। शुक्ल पक्ष अभिजित हरिप्रीता
मध्य दिवस अति शीत न घामा। पावन काल लोक--विश्रामा

सुर समूह विनती करी, पहुंचे निज निज धाम।
जग—निवास प्रभु प्रकटे, अखिल लोक—विश्राम॥

सुनि शिशु रुदन परम प्रिय वानी। सम्भ्रम चलि आई सब रानी
हर्षित जहँ तहँ धाई दासी। आनन्द-मगन सकल पुरवासी
गुरु वशिष्ठ-कहँ गयउ हंकारा। आये द्विजन सहित नृप-द्वारा
अनुपम बालक देखि न जाई। रूप—राशि गुण कहि न सिराई
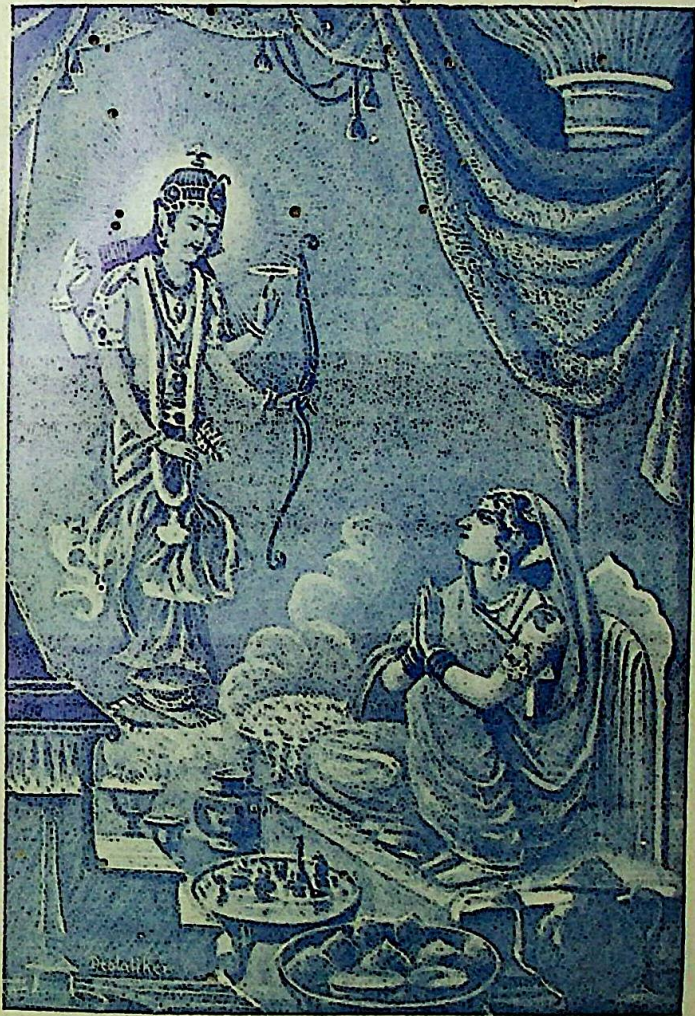
जय जय अविनासी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा।
अविगत गोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुन्दा॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृन्दा।
निसिवासर ध्यावहिं हरिगुन गावहिं जयति सच्चिदानन्दा॥

तब नान्दी—मुख श्राद्ध करि, जात-कर्म सब कीन्ह।
हाटक धेनु वसन मणि, नृप विप्रन कहं दीन्ह॥
गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगट भये सुख-कन्द।
हर्षवन्त सब जहं तहं, नगर-नारि-नर—वृन्द॥

भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नके जन्म

ककय—सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जन्मत भइं सोऊ॥
वह सुख सम्पति समय समाजा। कहि न सकैं शारद अहिराजा॥
तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरंग हेम गो हीरा। दीन्हें नृप नाना विधि चीरा॥

मन सन्तोषे सबनके, जहं तहं देहिं अशीश।
सकल तनय चिरजीवहु, तुलसिदास के ईश॥

कछुक दिवस बीते यहि भांती। जात न जानहिं दिन अरु राती॥
नाम-करणकर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी॥
जो आनन्द—सिन्धु सुख—राशी। सीकरतें त्रैलोक्य निवासी॥
सो सुख—धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥
विश्व भरण पोषण करु जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरण—ते रिपु नाशा। नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा॥

लक्ष्मि सुधाम राम प्रियं, सकल जगत आधार।
गुरु वशिष्ठ तेहिं राखेउ, लक्ष्मण नाम उदार॥
व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण विगद विनोद।
सो अज प्रेम भक्ति—वश, कौशल्याकी गोद॥

कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परि—जन सुखदाई॥

बाल लीला

चूड़ा—करण कीन्ह गुरु आई। विप्रन्ह बहुत दक्षिणा पांई॥

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥
भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भागि चलैं किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ॥
भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरु गृह पढ़न गये रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥
विद्या विनय निपुण गुण शीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥
करतल बाण धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
बन्धु सखा सब लीन्ह बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी॥
प्रात समय उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मांगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हर्षहिं मन राजा॥

विश्वामित्र और रामलक्ष्मण

विश्वामित्र महा मुनि ज्ञानी। बसहिं विपिन शुभ आश्रम जानी॥
तहं तप यज्ञ योग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥
देखत यज्ञ निशाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥
गाधि-तनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिनु मरहिं न निशिचर पापी॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरण महि भारा॥
यहि मिसु देखौं प्रभु पद जाई। करि विनती आनौं दोउ भाई॥
इहि विधि करत मनोरथ, जात न लागी बार।
करि मज्जन सरयू सलिल, गये भूप दरबार॥
करि दण्डवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारे आनी॥
तब मन हर्ष वचन कह राऊ। मुनि अस कृपा कीन्ह नहिं काऊ॥

केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लाउव वारा॥
असुर समूह सतावहिं मोहीं। मैं यांचन आयेऊँ नृप तोहीं॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशिचर वध मैं होव सनाथा॥
अति आदर दोउ तनय वुलाये। हृदय लाइ वहु भांति सिखाये॥
मेरे प्राण–नाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

सौंपे भूपति ऋषिहिं सुत, वहु विधि देइ अशीश।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद शीश॥

कटि पटपीत कसे वर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुं हाथा॥
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। विश्वामित्र महानिधि पाई॥

राक्षसों से युद्ध

चले जात मुनि दीन दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं वाण प्राण हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
तव ऋषि निज नाथहिं जियचीन्हा। विद्यानिधिकह विद्या दीन्हा॥
जाते लाग न क्षुधा पियासा। अतुलित वल तनु तेज प्रकासा॥

आयुध सकल समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कन्द मूल फल भोजन, दिये भक्त हित जानि॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मखकी रखवारी॥
सुनि मारीच निशाचर कोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही॥
विनु फर वाण राम तेहिं मारा। शत योजन गा सागर पारा॥
पावक शर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निशाचर कटक संहारा॥

धनुष-यज्ञ

धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हर्षि चले मुनिवरके साथा॥

चले राम लक्ष्मण मुनि संगा। गये जहां जगपावनि गंगा।
तब प्रभु ऋषन्हि समेत नहाये। विविधि दान महि देवन पाये॥
हर्षि चले मुनि वृन्द सहाया। वेगि विदेह नगर नियराया॥
पुर रम्यता राम जब देखी। हर्षे अनुज समेत विशेषी॥
विश्वामित्र महामुनि आये। समाचार मिथला-पति पाये॥
संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनिनायकहिं, मुदित राउ इहि भांति॥
कीन्ह प्रणाम धरणि धरि माथा। दीन्ह असीस मुदित मुनि-नाथा॥
विप्र वृन्द सब सादर वन्दे। जानि भाग्य वड़ राउ अनन्दे॥
कुशल प्रश्न कहि बारहिं बारा। विश्वामित्र नृपहिं बैठारा॥

जनकसे राम लक्ष्मणका परिचय

तेहि अवसर आये दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई॥
प्रेम मगन मन जानि नृप, करि विवेक धरि धीर।
बोलेउ मुनिपद नाइ शिर, गदगद गिरा गंभीर॥
कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक॥
रघुकुल-मणि दशरथके जाये। ममहितलागि नरेश पठाये॥
राम लषण दोउ बन्धुवर, रूप—शील—बल—धाम।
मख राखेउ सब साखि जग, जीति असुर संग्राम॥
मुनिहिं प्रशंसि नाइ पद शीशा। चले लिवाय नगर अवनीशा॥
सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहां बास लै दीन्ह भुवाला॥
ऋषिय संग रघुवंस मणि, करि भोजन विश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरियाम॥
राम अनुज मनकी गति जानी। भक्तबछलता हिय हुलसानी॥

रम विनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुसासन पाई॥
ाथ लषण पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
ो राउर अनुसासन पाऊँ। नगर देखाइ तुरत लै आऊँ॥

जाइ देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सफल सबके नयन, सुन्दर वदन दिखाइ॥

ुनि-पद--कमल वन्दि दोउ भ्राता। चले लोक-लोचन सुख-दाता॥
खन नगर भूप—सुत आये। समाचार पुर--वासिन पाये॥
ाये धाम काम सव त्यागे। मनहुं रंक निधि लूटन लागे॥
खि राम छवि सखि एक कहई। योग्य जानकी यह वर अहई॥
ो सखि इनहिं देखि नरनाहू। प्रण परिहरि हठि करहि विवाहू॥
ोउ कह इंनहिं भूप पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
खि परन्तु प्रण राउ न तजई। विधि बश हठि अविवेकहिं भजई॥
ोउ कह जो भल अहै विधाता। सब कहं सुनिय उचित फल-दाता॥
ौ जानकिहिं मिलिहि वर एहू। नाहिन आली यह सन्देहू॥

हिय हरषहिं वर्षहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृन्द।
जाहिं जहां जहं बन्धु दोउ, तहं तहं परमानन्द॥

र पूरब दिशि गे दोउ भाई। जहां धनुष मख भूमि बनाई॥
र बालक कहि कहि मृदु वचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना॥
ाशु सव राम प्रेम-वश जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
ाम देखावहिं अनुजहिं रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर वचना॥

सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ॥
गुरु पद-पंकज नाइ शिर, बैठे आयसु पाइ।

निशि-प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा। सब ही सन्ध्या वंदन कीन्हा।
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि युगयाम सिरानी।
मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई। लगे चरण चापन दोउ भाई।
बारबार मुनि आज्ञा दीन्हा। रघुवर जाय शयन तब कीन्हा।

उठे लषण निशि विगत सुनि, अरुण-शिखा-धुनिकान।
गुरुते पहिले जगत-पति, जागे राम सुजान॥

सकल शौच करि जाइ नहाये। नित्य निबाहि गुरुहिं शिर नाये।
समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।

राम और सीताका साक्षात्कार

चहुंदिशि चितै पूंछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन।
तेहि अवसर सीता तहं आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर मांगा।
एक सखी सिय संग विहाई। गई रही देखन फुलवाई।
तेइं दोउ बन्धु बिलोकेउ जाई। प्रेम विवश सीता पहं आई।
देखन बाग कुंवर दोउ आये। वय किशोर सब भांति सुहाये।

सुमिरि सीय नारद-वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिशि, जनु शिशु मृगी सभीत।

कंकण किंकिणि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषण सन राम हृदय गुनि।
मानहुं मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा। सिय-मुख शशि भये नयन चकोरा।
भये विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगंचल।
देखि सीय शोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा।

तात जनक-तनया यह सोई। धनुष यज्ञ जेहि कारण होई॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन क्षोभा॥
रघुवंसिन-कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरैं न काऊ॥
मोहिं अतिशय प्रतीति जिय केरी। जेहिं सपनेहु पर-नारि न हेरी॥
जिनके लहहिं न रिपु रण पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन दीठी॥
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥

करत बतकही अनुज सन, मन सिय-रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करत मधुप इव पान॥

धरि धीरज एक सखी सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरिकर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सन्मुख दोउ रघुसिंह निहारे॥
नख सिख देखि रामकी शोभा। सुमिरि पिता-प्रण मन अति क्षोभा॥
परवश सखिन लखी जब सीता। भई गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब इहि बिरियां काली। अस कहि मन विहँसी एक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ विलम्ब मातु भय मानी॥
गई भवानी भवन बहोरी। वन्दि चरण बोली करजोरी॥
देवि पूजि पद-कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबहीके॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मन कामना तुम्हारी॥

जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जात कहि।
मंजुल मंगल मूल, वाम अंग फरकन लगे॥

हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरु समीप गवँने दोउ भाई॥
राम कहा सब कौशिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दोउ भाइन दीन्ही॥

सफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषण सुनि भये सुखारे॥
करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
विगत दिवस मुनि आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई॥
करि मुनि चरण सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा॥
विगतनिशा रघुनायक जागे। बन्धु विलोकि कहन अस लागे॥
उगेउ अरुण अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥
नित्य क्रिया करि गुरुपहं आये। चरण सरोज सुभग शिरनाये॥

धनुषयज्ञ

शतानन्द तब जनक बुलाये। कौशिक मुनि पहं तुरत पठाये॥
जनक-विनय तिन आइ सुनाई। हर्षे बोलि लिये दोउ भाई॥

शतानन्द-पद बन्दि प्रभु, बैठे प्रभु पहं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाइ॥

पुनि मुनि-वृन्द समेत कृपाला। देखन चले धनुष-मखशाला॥
रंग—भूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरवासिन पाई॥
चले सकल गृह काज विसारी। बालक युवा जरठ नर नारी॥
देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिये हंकारी॥
तुरत सकल लोगन पहं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

कहि मृदु वचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥

हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि-पद-कमल गहे तब जाई॥
करि विनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहिं दिखाई॥
जहं जहं जाहिं कुंवर वर दोऊ। तहं तहं चकित चितव सब कोऊ॥

निज निज रुचि रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मर्म विशेषा॥
भलि रचना मुनि नृपसन कहेऊ। राजा मुदित परम सुख लहेऊ॥

सब मंचनते मंच एक, सुन्दर विशद विशाल।
मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ, बैठारे महिपाल॥
जानि सुअवसर सीय तब, पठवा जनक बुलाइ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लिवाइ॥

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप—गुण--खानी॥
उपमा सकल मोहिं लघुलागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥
तब बंदीजन जनक बुलाये। विरदावली कहत चलि आये॥
कह नृप जाइ कहहु प्रण मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा॥

जनककी प्रतिज्ञा

बोले बंदी वचन वर, सुनहु सकल महिपाल।
प्रण विदेह-कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विशाल॥

नृप भुजवल विधु शिवधनु राहू। गरुअ कठोर विदित सब काहू॥
रावण बाण महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे॥
सोइ पुरारि—कोदण्ड कठोरा। राज समाज आजु जेंहि तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। विनहिं विचार वरै हठि तेही॥
सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिशय मनमाषे॥

धनुर्भञ्जनका उद्योग

परिकर बांधि उठे अकुलाई। चले इष्ट—देवन शिर नाई॥

तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाय।
मनहु पाय भट-बाहुवल, अधिक अधिक गरुआय॥

भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरै न टारा॥
डिगै न शम्भु शरासन कैसे। कामी-वचन सती—मन जैसे॥
सब नृप भये योग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥
कीरति विजय वीरता भारी। चले चाप कर सरबस हारी॥
श्री-हत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥

जनक--खेद

नृपन विलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोष जनु साने॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न शंकर चाप चढ़ावा॥
रहा चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई॥
अब जनि कोउ माषै भट मानी। वीर विहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ। कुंवरि कुंवारि रहै का करऊँ॥
जो जनतेऊँ बिनु भट महि भाई। तौ प्रण करि करतेउँ न हँसाई॥
जनक वचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकी भये दुखारी॥

लक्ष्मणका प्रतिवाद

माषे लषण कुटिल भइ भौंहैं। रदपुट फरकत नयन रिसौंहैं॥

कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
नाइ राम-पद-कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥

रघुवंशिन महं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल-मणि जानी॥
सुनहु भानुकुल---पंकज—भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥

तोरौं छत्रक—दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभुपद सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

सैनहिं रघुपति लषण निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥
विश्वामित्र समय शुभ जानी। बोले अति सनेह मृदु बानी॥
उठहु राम भंजहु भव-चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुरु-वचन चरण सिर नावा। हर्ष विषाद न कछु उर आवा॥

धनुर्भङ्ग

ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि युवा मृग-राज लजाये॥
चाप समीप राम जब आये। नर नारिन सुर सुकृत मनाये॥
गुरुहिं प्रणाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि घन लयऊ। पुनि धनु नभ मण्डल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहू न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छिन मंध्य राम धनु तोरा। भयउ भुवन ध्वनि घोर कठोरा॥
प्रभु दोउ खंड चाप महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे॥
सखिन सहित हर्षित सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुख सोच विहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे॥
शतानन्द तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहं कीन्हा॥

संग सखी सुन्दर चतुर, गावहिं मङ्गल चार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार॥

जाय समीप राम छवि देखी। रहि जनु कुंवरि चित्र अवरेखी॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत युगल कर माल उठाई। प्रेम विवश पहिराइ न जाई॥
गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। क्रूर कुपूत मूढ़ मन मां
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहं तहं गाल बजावन लागे

परशुरामका क्रोध

तेहि अवसर सुनि शिव धनु भंगा। आये भृगुकुल-कमल-पतंगा
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुण्ड विराजा
शीश जटा शशि-वदन सुहावा। रिसिवश कछुक अरुण होइ आवा
भ्रकुटी कुटिल नयन रिस-राते। सहजहुं चितवत मनहुँ रिसाते
वृषभ-कंध दोउ बाहु विशाला। चारु जनेउ माल मृगछाला
कटि मुनि-वसन तूण दुइ बांधे। धनुशर कर कुठार कल कांधे
देखत भृगुपति भेष कराला। उठे सकल भय विकल भुआला
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा
जनक बहोरि आय शिर नावा। सीय बुलाय प्रणाम करावा
आशिष दीन्ह सखी हरषानी। निज समाज लै गईं सयानी
विश्वामित्र मिले पुनि आई। पद-सरोज मेले दोउ भाई
राम लषण दशरथके ढोटा। दीन्ह अशीष जानि भल जोटा

बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु कहा अति भीर।
पूछत जान अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारण महीप सब आये
सुनत वचन फिर अनत निहारे। देखे चाप-खण्ड महि डारे
अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केहिं तोरा
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं

सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्री-रघुवीर॥

नाथ शम्भु धनु भंजन—हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु कहा कहिय किन मोहीं। सुनि रिसाय बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई॥
सुनहु राम जेहिं शिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो विलगाइ विहाइ समाजा। नतु मारे जैहैं सब राजा॥
सुनि मुनि-वचन लषण मुसकाने। बोले परशुधरहिं अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुं न असि रिस कीन्ह गुसाईं॥
यहि धनुपर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल-केतू॥

रे नृप बालक कालवश, बोलत तोहि न संभार।
धनुही सम त्रिपुरारि-धनु, विदित सकल संसार॥

लषण कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
छुवत टूट रघुपतहिं न दोषू। मुनि विनुकाज करिय कत रोषू॥
बोले चितै परशुकी ओरा। रे शठ सुनेसि प्रभाव न मोरा॥
बालक जानि वधौं नहिं तोहीं। केवल मुनि जड़ जानेसि मोहीं॥
सहसबाहु—भुज छेदनहारा। परशु विलोकु महीप---कुमारा॥
विहँसि लषण बोले मृदुवानी। अहो मुनीश महा-भट मानी॥
पुनि पुनि मोहिं दिखाव कुठारा। चहत उड़ावन फूंकि पहारा॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इनपर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पां परिय तुम्हारे॥
कोटि कुलिश सम वचन तुम्हारा। वृथा धरहु धनुबाण कुठारा॥

जो विलोकि अनुचित कहेउ, क्षमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंश मणि, बोले गिरा गंभीर॥

कौशिक सुनहु मन्द यह बालक। कुटिल कालवश निज कुलघालक॥
तुम हटकहु जो चहहु उवारा। कहि प्रताप वल रोष हमारा॥
लषण कहा मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहिं अछत को वरनै पारा॥
सुनत लषणके वचन कठोरा। परशु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
बाल विलोकि बहुत मैं बांचा। अब यह मरणहार भा सांचा॥
कौशिक कहा क्षमिय अपराधू। बाल दोष गुण गनहि न साधू॥
उतर देत छाड़ौं विनु मारे। केवल कौशिक शील तुम्हारे॥
कहेउ लषण मुनि शील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाहा कहि सब लोग पुकारा॥

लषण उतर आहुति सरिस, भृगुपति कोप कृशानु।
वढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुलभानु॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। शुद्ध दूध मुख करिय न कोहू॥
जो लरिका कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिय कृपा शिशु सेवक जानी। तुम सम शील धीर मुनि ज्ञानी॥
राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषण बहुरि मुसकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता वड़ पापी॥
थर थर कांपहिं पुर-नर-नारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥
अति पुनीत मृदु शीतल बानी। बोले राम जोरि युग पानी॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालक वचन करिय नहिं काना॥
करिय वेगि जेहि विधि रिसि जाई। मुनिनायक सोइ करिय उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुं वन्धु तव चितव अनैसे॥
यहिके कण्ठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा॥

परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शम्भु-शरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध॥

न्धु कहै कटु सम्मत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे॥
रु परितोष मोर संग्रामा। नाहित छांडु कहाउब रामा॥
गुपति तमकि कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम शिर नाये॥
नहु लषण कर हमपर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
म कहा रिस तजिय मुनीशा। कर कुठार आगे यह शीशा॥
हि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहिं जानि आपन अनुगामी॥

प्रभु सेवकहिं समर कस, तजहु विप्रवर रोष।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहूं नहिं दोष॥
बारबार मुनि विप्रवर, कहा रामसन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तुहूं बंधुसम वाम॥

म कहा मुनि कहहु विचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
वतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥
र प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलसि निदर विप्रके भोरे॥
जेउ चाप दाप अति बाढ़ा। अहमिति मनहु जीति जग ठाढ़ा॥

जो हम निदरहिं विप्रवर, सत्य सुनहु भृगुनाथ॥
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयबस नावहिं माथ॥

त्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना॥
हौं सुभाव न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रण रघुबंसी॥
प्रवंसकी अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुमहिं डराई॥
नि मृदु गूढ़ वचन रघुपतिके। उघरे पटल परशुधर मतिके॥

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै स
छुवत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ। परशुराम मन विस्मय भ
जाना राम प्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय संमात॥
करौं कहा मुख एक प्रशंसा। जय महेश मन मानस हं
अनुचित बहुत कहेऊँ अज्ञाता। क्षमहु क्षमा मंदिर दोउ भ्रा
जय रघुवंश कमल-वन-भानू। गहन दनुज कुल दहन कृ
जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहा
कह जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गये बनहिं तप
सुख विदेह कर वरणि न जाई। जन्म दरिद्र मनहुं निधि
विगतत्रास भइ सीय सुखारी। जनु विधु उदय चकोर कुमा
जनक कीन्ह कौशिकहिं प्रणामा। प्रभु प्रताप धनु भंजेउ रा
मोहिं कृत-कृत्य कीन्ह दोउ भाई। अब जो उचित सो कहिय गु
कह मुनि सुनु नरनाह प्रवीना। रहा विवाह चाप आधी

बरातके लिये दशरथको निमंत्रण

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनै नृप दशरथहिं बु
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठये दूत अवध तेहि का
बहुरि महाजन सकल बुलाये। आइ सबन सादर शिर
हाट बाट मंदिर पुर बासा। नगर संवारहु चारिहु पा
पहुंचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर विलोकि सुहा
भूप द्वार तिन खबरि जनाई। दशरथ नृप सुनि लिये बु
करि प्रणाम तिन पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि ली

कुशल प्राणप्रिय वन्धु दोउ, अहहिं केहहु केहि देश।
सुनि सनेह साने वचन, वांची वहुरि नरेश।
तव उठि भूप वशिष्ठ कहं, दीन्ह पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहि सव, सादर दूत वुलाइ॥
नि वोले मुनि अति सुख पाई। पुण्य पुरुष कहं महि सुखदाई॥
मि सरिता सागरमहं जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
मि सुख सम्पति विनहिं वुलाये। धर्मशील पहं जाहिं सुभाये॥
न गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तस पुनीति कौशल्या देवी॥
कृती तुम समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
न ते अधिक पुण्य वड़ काके। राजन् राम सरिस सुत जाके॥
र विनीत धर्म-व्रत-धारी। गुण सागर वालक वर चारी॥
ह कहं सर्व काल कल्याना। सजहु वरात वजाइ निशाना॥
चलेउ वेगि सुनि गुरु वचन, भलेहिं नाथ शिर नाइ।
भूपति गवने भवन तव, दूतहिं वास दिवाइ॥
ना सव रनिवास वुलाई। जनक-पत्रिका वांचि सुनाई॥
ने सन्देश सकल हरषानी। अपर कथा सव भूप वखानी॥

वरातकी तैयारी

भरत पुनि लिये वुलाई। हय गय स्यन्दन साजहु जाई॥
हु वेगि रघुवीर. वराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥
त सकल साहनी वुलाये। आयसु दीन्ह मुदित, उठि धाये॥
त्र रुचि तुरंग साजि तिन साजे। वर्ण वर्ण वर वाजि विराजे॥
ग सकल सुठि चंचल करनी। अस जिमि जरत धरत पगुधरनी॥

नाना भाँति न जाइ बखाने। निदरि पवन जनु चहत उड़ा
तिन पर छयल भये असवारा। भरत सरिस सब राजकुमा
सब सुन्दर सब भूषण धारी। कर शर चाप तूण कटि भा

चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुन्दर सुखद, जो जेहि कारज जात॥

कोटिन कांवरि चले कहारा। विविध वस्तु को वरणै पा
गरजहिं गज घंटा ध्वनि घोरा। रथ रव वाजि हींस चहुं ओ
निदरि घनहिं घूमरहिं निशाना। निज पराव कछु सुनिय न का
महाभीर भूपतिके द्वारे। रज छुइ जाइ पषाण प
चढ़ी अटारिन देखहिं नारी। लिये आरती मंगल था
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनन्द न जाइ बखा
तव सुमन्त दुइ स्यन्दन साजी। जोते हय रवि-निन्दक-बा
दोउ रथ रुचिर भूप पहं आने। नहिं शारद प्रति जाहिं ब
राज समाज एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्रा

तेहि रथ रुचिर वशिष्ठ कहं, हरषि चढ़ाइ नरेश।
आपु चढ़े स्यन्दन सुमिरि, हर गुरु गौरि गणेश॥

सहित वशिष्ठ सोह नृप कैसे। सुर-गुरु संग पुरन्दर जै
करि कुल रीति वेद विधि राऊ। देखि सबहिं सब भांति बना
सुमिरि राम गुरु आयुस पाई। चले महीपति शंख बजा
हरषे विबुध विलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दा

बरातकी अगवानी

आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निशान।
सजि गज रथ पदचर तुरंग, लेन चले अगवान॥

करि पूजा बहु मान बड़ाई। जनवासे कहं चले लिवाई॥
आसन विचित्र पांवड़े परहीं। नृप दशरथ तापर पग धरहीं॥
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा। जहं सब कहं सब भांति सुपासा॥

भूप विलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन समेत।
उठेउ हरषि सुखसिन्धु महं, चले थाहसी लेत॥

मुनिहिं दण्डवत कीन्ह महीशा। बारबार पद-रज धरि शीशा॥
कौशिक राउ लिये उरलाई। दै अशीश पूछी कुशलाई॥
पुनि दण्डवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुख न समाई॥
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक शरीर प्राण जनु भेंटे॥
पुनि वशिष्ठ पद शिर तिन नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये॥
भरत सहानुज कीन्ह प्रणामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लषण देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरण गाता॥

पुरजन, परिजन, जातिजन, याचक मंत्री मीत।
मिले यथाविधि सबहिं प्रभु, परम कृपालु विनीत॥

रामहिं देखि बरात जुड़ानी। प्रीतिकि रीति न जाइ बखानी॥
पुरोहितहिं कहेउ नरनाहा। अब विलम्ब कर कारण काहा॥
शतानन्द तब सचिव बुलाये। मंगल कलश शकुन सब लाये॥
भयउ समय अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निसानन घाऊ॥

सजि आरती अनेक विधि, मंगल सकल संवारि॥
चलीं मुदित परिछन करन, गज गामिनि वर नारि॥
जो सुख भा सियमातु-मन, देखि राम वरवेष।
सो न सकहिं कहि कलपशत, सहस शारदा शेष॥

वेद विदित अरु कुल व्यवहारू। कीन्ह भली विधि सब परिचा
पंच शब्द ध्वनि मंगल गाना। पट पांवड़े परहिं विधि ना
करि आरती अर्घ तिन दीन्हा। राम गवन मंडप तब कीन्ह

नाऊ, वारी, भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित अशीसहिं नाइ सिर, हर्ष न हृदय समाइ॥

मिले जनक दशरथ अति प्रीती। करि वैदिक लौकिक सब री
देत पांवड़े अर्घ सुहाये। सादर जनक मण्डपहिं ला
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भां
समय विलोकि वशिष्ठ बुलाये। सादर शतानन्द मुनि आ
वेगि कुँवरि अब आनहु जाई। चले मुदित मन आयसु पा
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानि
सीय संवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लि
सिय सुन्दरता वरणि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरता
तेहि अवसर करि विधि व्यवहारू। दुहुं कुल-गुरु सब कीन्ह प्रचा
पढ़हिं वेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसर जा
वर विलोकि दम्पति अनुरागे। पांय पुनीत पखारन ला

हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहिं हरिहिं श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समर्पी, विश्वकुल कीरति नई॥
किमि करै विनय विदेह कीन्ह विदेह मूरति सांवरी।
करि होम विधिवत गांठि जोरी, होन लागीं भांवरी॥
जय ध्वनि बन्दी वेद ध्वनि, मंगल गान निशान।
सुनि हरषहिं वरषहिं विवुध, सुरतरु सुमन सुजान॥

हुरि वशिष्ठ दीन्ह अनुसासन। वर दुलहिनि वैठे एक आसन॥

तव जनक पाइ वशिष्ठ आयसु व्याह साजि संवारि कै।
माण्डवी श्रुतिकीर्ति उर्मिला, कुंवरि लई हंकारि कै॥
कुशकेतु-कन्या प्रथम जो गुण-शील-सुख-शोभा-मई।
सव रीति प्रीति-समेत करि सो व्याह नृप भरतहिं दई॥
जानकी-लघु-भगिनि जो सुन्दर-शिरोमणि जानि कै।
सो जनक दीन्ही व्याहि लषणहिं, सकल विधि सनमानि कै॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि, सुमुख सव गुण-आगरी।
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति, रूप-शील-उजागरी॥

स रघुवीर व्याह विधि वरणी। सकल कुंवर व्याहे तेहि करणी॥
हि न जाय कछु दाइज भूरी। रहा कनकमणि मण्डप पूरी॥
तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन देखा॥
कर जोरि जनक मृदुवानी। वोले सव वरात सनमानी॥

सहित वधूटिन कुंवर सव, तव आये पितु पास।
शोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास॥

जेवनार भयी वहु भांती। पठये जनक वोलाय वराती॥
त पांवड़े वसन अनूपा। सुतन समेत गवन किय भूपा॥
दर सवके पांव पखारे। यथा योग्य पीढ़न वैठारे॥
दर लगे परन ॰ पनवारे। कनक-कील-मणि-परण संवारे॥
सन लगे सुआर सुजाना। व्यंजन विविध नाम, को जाना॥
हे विधि सवहीं भोजन कीन्हा। आदर सहित आचमन लीन्हा॥

देइ पान पूजे जनक, दशरथ सहित समाज॥
जनवासे गवने मुदित, सकल भूप सिर-ताज॥
बहुत दिवस बीते यहि भांती। जनु सनेह-रज्जु बँधे बरा
कौशिक शतानन्द तब जाई। कहो विदेह नृपहिं समुझा
बारबार कौशिक—चरण, शीश नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तब, कृपा-कटाक्ष प्रभाउ॥
अब दशरथ कहं आयसु देहू। यद्यपि छांड़ि न सकहु स
भलेहि नाथ कहि सचिव बुलाये। कहि जय जीव शीश तिन न
अवध-नाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाव।
भये प्रेमबस सचिव सुनि, विप्र-सभासद-राव॥
दायज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि।
जो-अवलोकत लोकपति, लोक-संपदा थोरि॥
चलत बरात सुनत सब रानी। विकल मीनगण जनु लघु पा
पुनि पुनि सीय गोद कर लेहीं। देइ अशीष सिखावन दे
होइहहु संतत पियहिं पियारी। चिर अहिवात अशीष हमा
सासु ससुर गुरु सेवा करहू। पति रुख लखि आयसु अनुस
अति सनेह-बस सखी सयानी। नारि धर्म सिखवहिं मृदु बा
सादर सकल कुंवरि समुझाई। रानिन बारबार उर ल
तेहि अवसर भाइन सहित, राम भानु-कुल-केतु।
चले जनक-मंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु॥
बोले राम सुअवसर जानी। शील-सनेह-सकुच-मय ब
राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होनहित हमहिं प

ातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥
ुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेम-वश सासू॥
दय लगाइ कुंवरि सब लीन्हीं। पतिन सौंपि विनती अति कीन्हीं॥
ुनि सनेह-सानी बरबानी। बहु बिधि राम सासु सनमानी॥
ाम बिदा मांगत कर जोरी। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी॥
ाइ अशीष बहुरि शिर नाई। भाइन सहित चले रघुराई॥
ंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह-शिथिल सब रानी॥
नि धीरज धरि कुंवरि हंकारी। बारबार भेटहिं महतारी॥
हुंचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
ने पुनि मिलत सखिन बिलगाई। बाल बत्स जनु धेनु लवाई॥

बरात की विदाई

प्रेम—विवश परिवार सब, जानि सुलग्न नरेश।
कुंवरि चढ़ाईं पालकिन, सुमिरे सिद्धि गणेश॥

ु विधि भूप सुता समुझाई। नारि-धर्म कुल-रीति सिखाई॥
सी दास दिये बहुतेरे। शुचि सेवक जे प्रिय सियकेरे॥
य चलत व्याकुल पुरवासी। होइं शकुन शुभ मंगल—रासी॥
ुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुंचावन राजा॥

कोशलपति समधी जनक, सनमाने सब भांति।
मिलत परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥

ने मंडलिहिं जनक शिर नावा। आशिर्वाद सबहिं सन पावा॥
दर पुनि भेंटे जामाता। रूप-शील-गुण-निधि सब भ्राता॥
नि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरणकाम राम परितोषे॥
रि बरविनय ससुर सनमाने। पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने॥

विनती वहुरि भरत सन कीन्हीं। मिलि सप्रेम पुनि आशिष दी
मिले लषण रिपुसूदनहिं, दीन्ह अशीष महीश।
भये परस्पर प्रेमवश, फिर फिर नावहिं शीश॥
वार वार करि विनय वड़ाई। रघुपति चले संग सब भा
जनक गहे कौशिक-पद जाई। चरण-रेणु शिर नयन ला
कीन्ह विनय पुनि पुनि शिर नाई। फिरे महीपति आशिष पा
चली वरात निसान वजाई। मुदित छोट वड़ सब समुदा
वीच वीच वरवास करि, मग-लोगन सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुंची आय जनेत।
पुरजन आवत अकनि वराता। मुदित सकल पुलकावलि गा
निज निज सुन्दर सदन संवारे। हाट वाट चौहट पुर द्वा

अयोध्यामें आनन्दोत्सव

विविधि भांति मंगल कलस, गृह गृह रचे संवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुवर-पुरी निहारि॥
सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं जनु वहु वेष भार
भूपति-भवन कुलाहल होई। जाइ न वरणि समय सुख सो
कौशल्यादि राम--महतारी। प्रेम-विवश तनु दशा विसा
दिये दान विप्रन विपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥
प्रेम प्रमोद विवश सब माता। चलहिं न चरण शिथिल सब गा
राम दरश हित अति अनुरागीं। परिछन-साज सजन सब ला
विविध विधान वाजने वाजे। मंगल मुदित सुमित्रा सा
हरद दूव दधि पल्लव फूला। पान पुंगिफल मंगल मू

अक्षत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि विराजा॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाये। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये॥
शकुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल संकल सजहिं सब रानी॥
रची आरती विविध विधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥

कनक थार भरि मंगलनि, कमल करन लिय मात॥
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक प्रफुल्लित गात॥
निगम-नीति कुल-रीति-करि, अरघ पांवड़े देत।
बधुन सहित सुत परछि सब, चलीं लिवाय निकेत॥

चारि सिंहासन सहज सुहाये। जनु मनोज निज हाथ बनाये।
तिन पर कुंवरि कुंवर बैठारे। सादर पायं पुनीत पखारे॥
धूप दीप नैवेद वेद विधि। पूजे वर दुलहिन मंगलनिधि॥
बारहिंबार आरती करहीं। व्यंजन चारु चमर शिर ढुरहीं॥
वस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं॥
जो वशिष्ठ अनुशासन दीन्हा। लोक-वेद-विधि सादर कीन्हा॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥
पांय पखारि सकल अन्हवाये। पूजि भलीविधि भूप जिवांये॥
आदर दान प्रेम परितोषे। देत अशीष चले मन तोषे॥
बहु विधि कीन्ह गाधि-सुत पूजा। नाथ मोहिं सम धन्य न दूजा॥
कीन्ह प्रशंसा भूपति भूरी। रानिन सहित लीन्ह पगधूरी॥
पूजे गुरु-पद-कमल बहोरी। कीन्ह विनय मन प्रीति न थोरी॥

बधुन समेत कुमार सब, रानिन सहित महीश।
पुनि पुनि बन्दत गुरुचरण, देत अशीष मुनीश॥

सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि लिये गुरु ज्ञाति।
भोजन किये अनेक विधि, घरी पांच गइ राति॥
मंगल गान करहिं वर भामिनि। भइ सुख-मूल मनोहर यामिनि।
अंचै पान सब काहुन पाये। स्रग सुगन्ध भूपति छवि छीन्हे।
रामहिं देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले शिर नाई।
नृप सब भांति सबहिं सनमानी। कहि मृदु वचन बुलाई रा
वधू लरिकिनी पर घर आईं। राखेहु नयन-पलककी नां
देखि श्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम वचन सब मा
मारग जात भयावनि भारी। केहि विधि तात ताड़का मा
घोर निशाचर विकट भट, समर गनै नहिं काहु॥
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु॥
मुनिप्रसाद-बल तात तुम्हारे। ईश अनेक करवरे टा
मखरखवारी करि दोउ भाई। गुरु-प्रसाद सब विद्या पा
राम प्रतोषी मातु सब, कहि विनीत वर वैन।
सुमिरि शंभु गुरु विप्रपद, किये नींद वश नैन॥
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुण चूड़वर बोलन लां
वन्दि विप्र सुर गुरु पितु माता। पाइ अशीश मुदित सब भ्रा
कीन्ह शौच सब सहज शुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहं, आये चारिउ भाइ॥

विश्वामित्रका प्रस्थान

विश्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सप्रेम विनय वश रहहीं
दिन दिन शतगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनि रा
मांगत विदा राउ अनुरागे। सुतन समेत ठाढ़ भये आ

नाथ सकल सम्पदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥
करव सदा लरिकन पर छोहू। दरशन देत रहव मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरण मुख आव न वानी॥
दीन्ह अशीष विप्र बहु भांती। चले न प्रीति-रीति कहि जाती॥
राम सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुंचाई॥

रामरूप भूपति भगति, व्याह उछाह अनन्द।
जात सराहत मनहिं मन, मुदित गाधि-कुल-चंद॥

वामदेव रघुकुल-गुरु ज्ञानी। वहुरि गाधि-सुत-कथा वखानी॥
सुनि मुनि सुयश मनहिं मन राऊ। वर्णत आपन पुण्य प्रभाऊ॥
वहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन समेत नृपति गृह गयऊ॥

* इति वालकाण्ड *

अथ अयोध्याकाण्ड

श्रीगुरुचरण—सरोज—रज, निजमन मुकुर सुधारि।
वरणौं रघुबर विमलयश, जो दायक फल चारि॥

जबते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये॥
राम रूप गुण शील सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि मुनि-राऊ॥

सबके मन अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेश।
आपु अछत युवराज-पद, रामहिं देहिं नरेश॥

राउ सुभाय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुर सम कीन्हा॥
श्रवणसमीप भये सित केशा। मनहुं चौथपन अस उपदेशा॥
नृप युवराज रामकहं देहू। जीवन जन्म सफल करि लेहू॥

अस विचारि उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ।
तनु पुलकित मन मुदित अति, गुरुहिं सुनायउ जाइ॥

रामाभिषेककी तैयारी

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ बिहंसि मृदुबानी॥
नाथ राम करिये युवराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू॥
सुनि मुनि दशरथ-वचन सुहाये। मंगल मोद मूल अति भाये॥

वेगि विलम्ब न करिय नृप, साजिय सकल समाज।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं युवराज॥

मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंत्र बुलाये॥
प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू। रामहिं राज देहु युवराजू॥
जो पांचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

कहेउ भूप मुनिराज कर, जो जो आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, वेगि करहु सोइ सोइ॥

हरषि मुनीश कहेउ मृदुवानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषधि मूल फूल फल पाना। कहे नाम गणि मंगल नाना॥
चामर चर्म वसन वहुभांती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगल वस्तु अनेका। जो जग योग भूप अभिषेका॥
वेद विदित कहि सकल विधाना। कहेउ रचहु पुर विविध विताना॥

ध्वज-पताक-तोरन-कलश, सजहु तुरंग रथ नाग।
शिर धरि मुनिवर वचन सब, निज निज काजहिं लाग॥
तेहि अवसर मंगल परम, सुनि हरषेउ रनिवास।
शोभित लखि विधु बढ़त जनु, वारिधि वीचि विलास॥

प्रथम जाइ जिन्ह वचन सुनावा। भूषण वसन भूरि तिन्ह पावा॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल साज सजन सब लागीं॥
चौकैं चारु सुमित्रा पूरी। मणि-मय विविध भांति अति रूरी॥
आनन्द मगन राम महतारी। दिये दान बहु विप्र हँकारी॥
पूजेउ ग्राम देव सुर नागा। कहेउ वहोरि देन वलि भागा॥
तब नरनाह वशिष्ठ बुलाये। राम-धाम सिख देन पठाये॥
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ नायउ पद माथा।
सुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु मम गेहू॥

आयसु होय सो करिय गुसांई। सेवक लहै स्वामि सेव
सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहिं प्रशंस।
कस न राम तुम कहहु अस, हंस-वंस—अवतंस॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुमहिं युव
राम करहु सब संयम आजू। जो विधि कुशल निवाहैं
मन्थराका कैकेयीको भड़काना
देखि मन्थरा नगर बनावा। मंगल मंजुल वाज व
पूंछेसि लोगन काह उछाहू। रामतिलक सुनि भा उर
करै विचार कुवुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवन विधि
भरत मातु पहँ गइ विलखानी। का अनमनि हंसि हंसि कह
हंसि कह रानि गाल वड़ तोरे। दीन्ह लषण सिख अस मन
तवहुं न वोलि चेरि वड़ि पापिनि। छांड़ै श्वास कारि जनु सांपिनि
सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल॥
भरत लषण रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर शाल॥
कत सिख देहि हमहिं कोउ माई। गाल करव केहि कर बल
रामहिं छांड़ि कुशल केहि आजू। जाहि नरेश देत युव
भा कौशल्यहिं विधि अति दाहिन। देखत गर्व रहत उर नाहिं
पूत विदेस न सोच तुम्हारे। जानतिहौ वश नाह ह
सुनि प्रिय वचन कुटिल मन जानी। झकी रानि अब रहु अर
पुनि अस कवहुं कहसि घरफोरी। तौ धरि जीभ कढ़ावौं
काने खोरे कूवरे, कुटिल कुचाली जानि॥
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसकानि॥

म-तिलक जो सांचेहु काली। मांगु देउँ मन भावत आली॥
णते अधिक राम प्रिय मोरे। तिनके तिलक छोभ कस तोरे॥
भरत-शपथ तोहिं सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव॥
हरष समय विस्मय करसि, कारन मोहिं सुनाव॥
कहिं वार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
दर पुनि पुनि पूंछति ओही। शवरी-गान मृगी जनु मोही॥
म पूंछहु मैं कहत डराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
य सिय राम कहा तुम रानी। रामहिं तुम प्रिय सो फुर वानी॥
प्रथम अब सो दिन बीते। समय पाइ रिपु होहिं पिरीते॥
नु कमल-कुल पोषनिहारा। विनु जल जारि करै सोइ छारा॥
तुम्हारि चह सवति उखारी। रूंधहु करि उपाइ बर बारी॥
तुर गंभीर राम महतारी। बीच पाइ निज काज संवारी॥
ये भरत भूप ननिऔरे। राम मातु मत जानब रौरे॥
प्रपंच भूपहिं अपनाई। राम-तिलक हित लगन धराई॥
रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रवोध॥
कहेसि कथा शत सौतिकर, जाते वढ़ै विरोध॥
वी वश प्रतीति उर आई। पूंछि रानि निज शपथ दिवाई॥
पूंछहु तुम अजहुं न जाना। हित अनहित निज पशु पहिंचाना॥
हिं तिलक कालि जौं भयऊ। तुम कहँ विपति बीज विधि बयऊ॥
सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥
य-सुता सुनत कटुवानी। कहि न सकै कछु सहमि सुखानी॥
पसेव कदलीजनु कांपी। कुबरी दशन जीभ तब चांपी॥

अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह॥
केहि अघ एकहि वार मोहिं, दैव दुसह दुख दीन्ह॥
नैहर जनम भरव वरु जाई। जियत न करव सवति से
दीन वचन कह वहु विधि रानी। सुनि कुवरी तिय माया
भामिनि करहु तो कहहुं उपाऊ। हैं तुम्हरे सेवा-वस
कहै चेरि सुधि अहै कि नाहीं। स्वामिनि कहेहु कथा मोहि
दुइ वरदान भूप सन थाती। मांगहु आज जुड़ावहु
सुतहिं राज रामहिं वनवासू। देहु लेहु सव सवति
भूपति राम शपथ जव करई। तव मांगेहु जेहि वचन न
कुवरिहिं रानि प्राण सम जानी। वार वार वड़ि बुद्धि व
तोहिं सम हित न मोर संसारा। वहे जात-कर भयसि
जो विधि पुरव मनोरथ काली। करौं तोहिं चखपूतरि

कोपभवनमें कैकेयीका जाना

वहु विधि चेरिहिं आदर देयी। कोप भवन गवनी
कोपसमाज साज सजि सोई। राज्य करत तेहिं कुमति
राउर नगर कोलाहल होई। यह कुचाल कछु जान न
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते

सांझ भये सानन्द नृप, गये केकयी-गेह॥
गवन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह॥

कोप भवन सुनि सकुचे राऊ। भय वस आगे परै न
सुरपति वसैं वाहुबल जाके। नरपति रहहिं सकल रुख
सो सुनि तिय रिस गये सुखाई। देखहु काम प्रताप

ल कुलिश असि अंग निहारे। ते रतिनाथ सुमन शर मारे॥
इ निकट नृप कह मृदुवानी। प्राण प्रिया केहि हेतु रिसानी॥
वार वार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक वयनि॥
कारण मोहिं सुनाव, गज-गामिनि निज कोप-कर॥
हु केहि रंकहिं करौं नरेशू। कहु केहि नृपहिं निकारौं देशू॥
या प्राण सुत सर्वस मोरे। परिजन प्रजा सकल वश तोरे॥
ो कछु कहौं कपट करि तोहीं। भामिनि राम-शपथ शत मोहीं॥
हँसि मांगु मन भावति वाता। भूषण साजु मनोहर गाता॥
मांगु मांगु पै कहहु पिय, कबहुं देहु न लेहु॥
देन कहेउ वरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु॥
ठहिं दोष हमहिं जनि देहू। दुइके चारि मांगि किन लेहू॥
कुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाइँ पर वचन न जाई॥
हं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होंहि कि कोटिक गुंजा॥
त्य मूल सब सुकृत सुहाई। वेद पुराण विदित मुनि गाई॥
हे पर राम शपथ करवाई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
त दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमति विहंग कुलह जनु खोली॥
हु प्राणपति भावति जीका। देहु एक वर भरतहिं टीका॥

राम बनवासका प्रस्ताव

र वर मांगौ कर जोरी। नाथ मनोरथ पुरवहु मोरी॥
पस भेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम बनवासी॥
नि तिय वचन भूप उर शोकू। शशि कर छुवत विकल जिमि कोकू॥
वरण भयउ निपट महिपालू। दामिनि हनेउ मनहु तरु तालू॥

माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन। तनुधरि शोच लागु जनु सो
बोले राउ कठिन करि छाती। वानी विनय न ताहि सु
मोरे भरत राम दोउ आंखी। सत्य कहौं करि शंकर सा
अवशि दूत मैं पठउव प्राता। ऐहैं वेगि सुनत दोउ भ्रा
सुदिन साधि सब साजि सजाई। देहौं भरतहिं राज व
एकहिं वात मोहिं दुख लागा। वर दूसर असमंजस मां
कहु तजि रोष राम अपराधू। सब कोउ कहत राम सुठि
प्रिया हास रिस परिहरहु, मांगु विचारि विवेक॥
जेहि देखौं अव नयन भरि, भरत राज अभिषेक॥
जियै मीन वरु वारि विहीना। मणि विनु फणिक जियै दुख
कहौं स्वभाव न छल मन माहीं। जीवन मोर राम विनु न
होत प्रात मुनि वेष धरि, जो न राम वन जाहिं॥
मोर मरण राउर अयश, नृप समझहु मन माहिं॥
कंठ सूख मुख आव न वानी। जिमि पाठीन दीन विनु पा
पुनि कह कटु कठोर कैकेयी। मर्म पोछि जनु माहुर दे
फिर पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाय नाहरू ला
राम राम रटि विकल भुवालू। जनु विनु पंख विहंग विहा
हृदय मनाव भोर जनि होई। रामहिं जाइ कहै जनि को
द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदय रवि देषि॥
जागे अवहुं न अवधपति, कारण कवन विशेषि॥
जाहु सुमन्त जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पे
गे सुमन्त नृप-मंदिर माहीं। देखि भयानक जात डरा

छत कोउ न उतर कछु देई। गे जेहि भवन भूप कैकेई॥
हि जय जीव बैठि सिरनाई। देखि भूप-गति गयउ सुखाई॥
चिव सभीत सकै नहि पूछो। बोली अशुभ भरी शुभ छूछो॥

पर्यो न राजहिं नींद निशि, मर्म जानु जगदीश॥
राम राम रटि भोर किय, हेतु न कहेउ महीश॥

ानहु रामहिं वेगि बुलाई। समाचार तव पूछहु आई॥
लेउ सुमन्त राउ रुख जानो। लखो कुचाल कीन्ह कछु रानी॥
ोच विवश मग परै न पाऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ॥
ाम सुमन्तहिं आवत देखा। आदर कीन्ह पिता सम लेखा॥
रखि वदन कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहिं चले लिवाई।

जाइ दीख रघुवंशमणि, नरपति निपट कुसाज॥
सहमि परेउ लखि सिंहनिहिं, मनहुं वृद्ध गजराज॥

राम-कैकेयी-संवाद

हिं कहु मातु तात दुख कारन। करिय जतन जेहि होइ निवारण॥
नहु राम सब कारण एहू। राजहिं तुम पर बहुत सनेहू॥
न कहेउ मोहिं दुइ वरदाना। मांगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना॥
सुनि भयेउ भूप उर सोचू। छांड़ि न सकहिं तुम्हार सकोचू॥

सुत-सनेह इत वचन उत, संकट परेउ नरेश॥
सकहु तो आयसु शोश धरि, मेटहु कठिन कलेश॥

व प्रसंग रघुपतिहिं सुनाई। बैठी जनु तनुधरि निठुराई॥
ले वचन बिगत सब दूषण। मृदु मंजुल जनु वाग-विभूषण॥
नु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

तनय मातु पितु पोषनहारा। दुर्लभ जननी यह संसा
मुनिगण मिलन विशेष वन, सवहिं भांति भल मोर॥
तेहिमा पितु आयसु वहुरि, सम्मत जननी तोर॥
भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सन्मुख
जो न जाहुँ वन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहिं मूढ़ समा
अस्व एक दुख मोहिं विशेषी। निपट विकल नर-नायक दे
रहसी रानि रामरुख पाई। वोली कपट सनेह ज
शपथ तुम्हारि भरतकै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जा
तुम अपराध योग नहिं ताता। जननी-जनक-वन्धु सुखदा
राम सत्य तुम जो कछु कहहू। तुम पितु मातु वचन रत
पितहिं वुझाइ कहौ वलि सोई। चौथेपन जिहि अयस न
सचिव संभारि राउ वैठारे। चरण परत नृप राम नि
लिये सनेह विकल उर लाई। गइ मणि फणिक वहुरि जिमि
रामहिं चितै रहे नर नाहू। चला विलोचन वारि प्र

दशरथसे रामकी विनय

मंगल समय सनेह-वश, शोच परिहरिय तात॥
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात॥
धन्य जन्म जगती तल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुन जा
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जा
आयसु पालि जन्म फल पाई। ऐहौं वेगिहि होहु रजा
विदा मातु सन आवौं मांगी। चलिहौं बनहिं वहुरि पग ला
अस कहि राम गमन तव कीन्हा। भूप शोक वश उतर न दी

बनगमनकी बातसे शोक

लि बनाइ विधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं केकयिहि गारी॥
हे पापिनिहिं बूझि का परेऊ। छाय भवन. पर पावक धरेऊ॥
। सुनाइ विधि काह सुनावा। का दिखाइ चह काह दिखावा॥
सखिन सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिणाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥
कल वियोग प्रजा अकुलानी। जिमि जलचरगण सूखे पानी॥
ति विषाद बस लोग लुगाई। गये मातु पहँ राम गुसाई॥
कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
न्ह अशीष लाइ उर लीन्हे। भूषन वसन निछावर कीन्हे॥
रबार मुख चुम्बति माता। नयन-नेह-जल पुलकित गाता॥
द राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम--रस--पयद सुहाये॥
त जाउँ बलि बेगि अन्हाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
तु समीप तव जायहु भैया। भइ बड़ि बार जाय बलि मैया॥
-धुरीण-धर्म गति जानी। कहेहु मातु सन अति मृदुवानी॥
ता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहं सब भांति मोर बड़ काजू॥
यसु देहु मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
वर्ष चारि-दस बिपिन-बसि, करि पितु बचन प्रमान॥
आय पांय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥
न विनीत मधुर रघुवरके। सर सम लगे मातु उर करके॥
मि सूखि सुनि शीतल बानी। जिमि जवास पर पावस पानी॥
 धीरज सुत-वदन निहारी। गद्गद वचन कहति महतारी॥

राज देन कहँ शुभ दिन साधा । कहेउ जान वन केहि अप
निरखि राम रुख सचिव सुत, कारण कहेउ बुझाइ॥
सुनि प्रसंग रहि मूकगति, दशा बरनि नहिं जाइ॥
सरल सुभाव राम महतारी। बोली बचन धीर धरि
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धर्मक
राज्य देन कहि दीन्ह बन, मोहि न दुख लवलेश॥
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचण्ड कलेश॥
जाहु सुखेन वनहिं बलि जाऊँ। कर अनाथ जन परिजन
बहु विधि विलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहिं
राम उठाइ मातु उर लावा। कहि मृदु वचन बहुत समुझ
समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ॥
जाइ सासु पद कमल युग, बंदि बैठि सिरनाइ॥
मंजु विलोचन मोचत बारी । बोली देखि राम मह
तातु सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहिं पि
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन पगु अवनि
जिवन मूरि जिमि जुगवति रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन
सो सिय चहति चलन बन साथा। आयसु काह होय रघु
करि केहरि निशिचर चरहिं, दुष्ट जन्तु बन भूरि।
विष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी। शील सनेह सुधा जनु
कहि प्रिय वचन विवेक मय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं, प्रगट विपिन गुण दोष॥

राजकुमारि सिखावन सुनहू। आनि भांति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। वचन हमार मानि घर रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥
एहिते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सास ससुर पद पूजा॥
कहौं सुभाव शपथ शत मोहीं। सुमुखि मातु हित राखौं तोहीं॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम वारि बयारी॥
कुश कंटक मग कंकर नाना। चलब पयादेहि विनु पद-त्राना॥
भूमि शयन वलकल बसन, असन कंद फल मूल॥
तेकि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥
नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेष विधि कोटिन धरहीं॥
लागै अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहिं जाति बखानी॥
व्याल कराल विहंग वन घोरा। निशिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृग लोचनि तुम भीरु सुभाये॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चन्द्रवदनि दुख कानन भारी॥
सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करै हित मानि॥
सो पछिताइ अघाइ उर, अवशि होइ हित हानि॥
सुनि मृदु वचन मनोहर पियके। लोचन नलिन भरे जल सियके॥
बरबस रोकि विलोचन वारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासुपद कह कर जोरी। क्षमब मातु बड़ि अविनय मोरी॥
दीन्ह प्राणपति मोहिं सिख सोई। जेहि विधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं॥
एहिविधि सिय सासुहिं समुझाई। कहति पतिहि बर विनय सुनाई॥

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम विनु रघु-कुल-कुमुद-विधु, सुर-पुर नरक समान॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय विनु तियहिं तरणि ते
तन धन धाम धरणि पुर राजू। पति विहीन सब शोक स
भोग रोग सम भूषण भारू। यम यातना सरिस सं
प्राण-नाथ तुम विनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुं कोउ
जिय विनु देह नदी विनु वारी। तैसेहिं नाथ पुरुष विनु
खग मृग परिजन नगर बन, वलकल वसन दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, पर्ण-शाल सुख मूल॥
बन दुख नाथ कहेउ वहुतेरे। भय विषाद परिताप
प्रभु-वियोग लव लेश समाना। सब मिलि होहिं न कृपा-नि
अस जिय जानि सुजान शिरोमनि। लेइय संग मोहिं छाड़िय
विनती बहुत करौं का स्वामी। करुणा-मय उर अन्तर-
मैं सुकुमारि नाथ बन योगू। तुमहि उचित तप मो कहँ
ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान॥
अस कहि सीय विकल भइ भारी। वचन वियोग न सकी सं
देखि दशा रघुपति जिय जाना। हठ राखे राखहि नहिं
कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा। परिहरि शोच चलहु बन
कहि प्रिय वचन प्रियहिं समुझाई। लगे मातुपद आशिष
सीतहिं सासु अशीष सिख, दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पदपद्म शिर अति हित वारहिं वार॥

समाचार जब लक्ष्मण पाये। व्याकुल वदन बिलखि उठि धाये॥
कम्प पुलक तनु नयन सनीरा। गहे चरण अति-प्रेम-अधीरा॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जलते काढ़े॥
बोले रामं वचन नयनागर। सील सनेह सरल सुख-सागर॥
तात प्रेम-वश जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जन्मके, नतरु जन्म जग जाय॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करो मातु-पितु-पद सेवकाई॥
भवन भरत रिपु-सूदन नाहीं। राव वृद्ध मम दुख मन माहीं॥
मैं वन जाउं तुमहिं लै साथा। होइहि सब विधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारा। सब कहँ परै दुसह दुख भारा॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवशि नरक अधिकारी॥
रहहु तात अस नीति विचारी। सुनत लषण भये व्याकुल भारी॥

उतर न आवत प्रेम-वश, गहे चरण अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहा बसाइ॥

मोरे सबै एक तुम स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तरयामी॥
धर्म नीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम वचन चरण रति होई। कृपा-सिन्धु परि-हरिय कि सोई॥

करुणा-सिन्धु सुबन्धुके, सुनि मृदु वचन विनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥

मांगहु विदा मातुसनजाई। आवहु वेगि चलहु वन भाई॥

हर्षित हृदय मातु पहँ आये। मनहुं अन्ध फिरि लोचन
जाइ जननि पद नायउ माथा। मन रघुनन्दन जानकि
पूछेउ मातु मलिन मन देषी। लषण कहेउ सब कथा
धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भांति
अवध तहां जहँ राम निवासू। तहां दिवस जहँ भानु
जौपै राम सीय वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु

मातु-चरण शिर नाइ, चले तुरत शंकित हिये।
वागुरु विषम तुराइ, मनहुं भागु मृग भाग-वश॥

चले लषण जहं जानकिनाथा। भे मन मुदित पाइ प्रिय
वन्दि राम-सिय-चरण सुहाये। चले संग नृप मन्दिर
भइ बड़ि भीर भूप दरवारा। वरणि न जाइ बिषाद
सचिव उठाइ राव वैठारे। कहि प्रिय वचन राम

सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह वश, राउ लिये उर लाइ॥

सके न बोलि विकल नर-नाहू। शोक बिकल उर दारुण
नाइ शीश पद अति अनुरागा। उठि रघुनाथ विदा तब
पितु आशिष आयसु मोहिं दीजै। हर्ष समय विसमय कत
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू। यश जग जाइ होइ
सुनि सनेह-वस उठि नर-नाहू। वैठारे रघुपति गहि
राउ राम राखन हित लागी। बहु उपाय कीन्हे छल
लखे राम रुख रहत न जाने। धर्म धुरंधर धीर

ब नृप सीय लाइ उर लीनो। अति हित वहुत भांति सिख दीनो॥
कहि वनके दुख दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये॥
सियमन राम–चरण-अनुरागा। घर न सुगम बन विषम न लागा॥
औरो सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि विपिन विपति-अधिकाई॥
सीय सकुच–वस उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि-पट-भूषण-भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुवानी॥
नृपहिं प्राणप्रिय तुम रघुबीरा। शील सनेह न छांड़हिं भीरा॥
सुकृत सुयश परलोक न भाऊ। तुमहिं जान वन कहहिं न राऊ॥
अस विचारि सोइ करौ जो भावा। राम जननि-सिख सुनि सुख पावा॥
राम तुरत मुनि वेष–वनाई। चले जनक-जननी शिर नाई॥

सजि वन साज समाज सब, वनिता वन्धु समेत।
बन्दि विप्र-गुरु-चरण प्रभु, चले करि सबहिं अचेत॥

निकसि वशिष्ठ–द्वार भये ठाढ़े। देखे लोग विरह-दव दाढ़े॥
कहि प्रिय वचन सवहिं समुझाये। विप्र वृन्द रघुवीर बुलाये॥
गुरु सन कहि वर्षाशन दीन्हे। आदर दान विनय बहु कीन्हे॥
गणपति गौरि गणेश मनाई। चले अशीष पाइ रघुराई॥
राम चलत अति भयो विषादू। सुनि न जाय पुर आरत नादू॥
भौ मुर्छा तव भूपति जागे। बोलि सुमन्त कहन अस लागे॥

सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनक सुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ दिखराइ बन, फिरेहु गये दिन चारि॥

जो नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्य सिन्धु दृढ़ व्रत रघुराई॥
तौ तुम विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेश–किशोरी॥

जब सिय कानन देखि डराई । कहेउ मोर सिख अवसर
सासु ससुर अस कहेउ संदेशू । पुत्रि फिरिय वन वैहुत

पाइ रजायसु नाय सिर, रथ अति रुचिर बनाय ।
गयहु जहां बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाय ॥

रामकी बनयात्रा

तब सुमन्त नृप वचन सुनाये । करि विनती रथ राम
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हर्षि अवधहिं शिर

बालक वृद्ध विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

रघुपति प्रजा प्रेमवश देषी । सदय हृदय दुख भयउ
कहि सप्रेम मृदु वचन सुहाये । बहु विधि राम लोग
किये धर्म उपदेश घनेरे । लोग प्रेमवश फिरहिं न
लोग शोक श्रमवश गये सोई । कछुक देव-माया मति
जबहिं यामयुग यामिनि बीती । राम सचिव सन कहेउ
खोजमारि रथ हांकहु ताता । आन उपाय बनहिं नहिं

राम लषन सिय यान चढ़ि, शंभु चरण शिर नाइ ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥

जागे सकल लोग भये भोरू । गये रघुवीर भयो अति
रथ कर खोज कतहुं नहिं पावहिं । राम राम कहि चहुंदिशि
यहि विधि करत प्रलाप कलापा । आये अवध भरे
विषम वियोग न जाइ बखाना । अवधि आश राखहिं सब
सीता सचिव सहित दोउ भाई । शृंगवेर पुर पहुंचे

तरे राम देव-लरि देखो। कीन्ह दण्डवत हर्ष विशेषो॥
वन सचिव सिय कीन्ह प्रणामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा॥
ज्ञन कीन्ह पन्थ श्रम गयऊ। शुचि जल पियत मुदित मन भयऊ॥
ह सुधि गुहं निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बुलाई॥
फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चल्यो हिय हर्ष अपारा॥
रि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं विलोकत अति अनुरागे॥
हज सनेह विवश रघुराई। पूछेउ कुशल निकट बैठाई॥
थ कुशल पद-पंकज देखे। भयऊ भाग्य-भाजनजन-लेखे॥
व निषाद-पति उर अनुमाना। तरु शिंशुपा मनोहर जाना॥
रघुनाथहिं ठौर बतावा। कहेउ राम सब भांति सुहावा॥
जन करि जुहार गृह आये। रघुवर सन्ध्या करन सिधाये॥
इ संवारि साथरी बनाई। कुश किशलय मृदु परम सुहाई॥
चि फल मूल मृदुल मधु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी॥

सिय सुमन्त भ्राता सहित, कन्द मूल फल खाइ।
शयन कीन्ह रघुवंश-मणि, पांय पलोटत भाइ॥

लषण प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहिं सोवन मृदुवानी॥
छुक दूरि सजि बाण शरासन। जागन लगे बैठि वीरासन॥
बुलाइ पाहरू प्रतीती। ठांव ठांव राखे अति प्रीती॥
पु लषण पहँ बैठेउ जाई। कटि भाथा शर चाप चढ़ाई॥
-सीय महि शयन निहारी। भयहु विषाद निषादहिं भारी॥
लषण मधुर मृदु बानी। ज्ञान विराग भक्ति रस सानी॥
उ न काहु दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

योग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा
जन्म मरण जहं लगि जग जालू। सम्पति विपति कर्म अरु काल
धरणि धाम धन पुर परिवारू। स्वर्ग नरक जहँ लगि व्यवहा
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ
सपने होहि भिखारि नृप, रंक नाक-पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जग जोइ॥
अस विचारि नहिं कीजिय रोषू। वादि काहु नहिं दीजिय दो
मोह निशा सब सोवनि-हारा। देखहिं स्वप्न अनेक प्रक
इहि जग यामिनि जागहिं योगी। परमारथी प्रपंच वि
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरा
होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुवीर-चरण अनु
कहत राम-गुण भा भिनुसारा। जागे जग मंगल
सकल शौच करि राम अन्हाये। शुचि सुजान बट-क्षीर म
अनुज सहित शिर जटा बनाये। देखि सुमन्त नयन जल
हृदय दाह अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति
नाथ कहेउ अस कोशल-नाथा। लै रथ जाहु रामके
वन दिखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु वेगि फेरि दोउ
लषण राम सिय आनेहु फेरी। संशय सकल सकोच
नृप अस कहेउ गुसाइं जस, कहिय करौं बलि सोइ।
करि बिनती पांयन परेउ, दीन बाल जिमि रोइ।
तात कृपा कर कीजिय सोई। जाते अवध अनाथ न
मंत्रिहिं राम उठाइ प्रबोधा। तात धर्म-मगु तुम सब

र्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुराण बखाना॥
सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे सो तिहुं पुर अपयश छावा॥
भावित कहँ अपयश लाहू। मरण कोटि सम दारुण दाहू॥

पितु-पद गहि कहि कोटि विधि, विनय करब कर जोरि।
चिन्ता कवनिहु बातकी, तात करिय जनि मोरि॥

र पुनि पितु समान हित मोरे। विनतो करौं तात कर-जोरे॥
ब विधि सोइ करतव्य तुम्हारे। दुख न पाव नृप शोच हमारे॥
नि रघुनाथ-सचिव-संवादू। भयउ सपरिजन विकल निषादू॥
नि कछु लषण कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥
कुचि राम निज शपथ दिवाई। लषणसंदेश कहब जनि जाई॥
इ सुमन्त पुनि भूप सन्देसू। सहि न सकहिं सिय विपिन कलेसू॥
हे विधि अवध आय फिर सीया। सोइ रघुनाथ तुमहिं करनीया॥
भु संदेश सुनि कृपानिधाना। सियहिं दीन्ह सिख कोटि विधाना॥
स ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु तौ सब कर मिटै खँभारू॥
ने पतिवचन कहति वैदेही। सुनहु प्राणपति परम सनेही॥
करुणा-मय परम विवेकी। तनु तजि छांह रहत किमि छेकी॥
जाइ कहँ भानु विहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई॥
हिं प्रेम-मय विनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई॥
पितु ससुर सरिस हितकारी। उतर देउँ फिर अनुचित भारी॥

आरतवश सन्मुख भइउं, बिलग न मानब तात।
आरज-सुत-पद-कमल बिनु, बादि जहां लग नात॥

रघुपति पद-पद्म-परागा। मोहिं कोउ सपनेहुं सुखद न लागा॥

अगम पन्थ वन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अ...
कोल्ह किरात कुरंग विहंगा। मोहिं सब सुखद प्राणपति...

सास ससुर सन मोरि हुति, विनय करब परि पाय।
मोर शोच जनि करिय कछु, मैं वन सुखी स्वभाय॥

सुनि सुमन्त सिय शीतल बानी। भये विकल जनु फणि मणि...
नयन न सूझ सुने नहिं काना। कहि न सकै कछु अति अ...
राम प्रबोध कीन्ह बहु भांती। तदपि होइ नहिं सीतल...
यत्न अनेक साथ हित कीन्हा। उचित उतर रघुनन्दन...
राम लषण सिय पद शिर नाई। फिरै वणिक जिमि मूरि...

रथ हांके हय राम तन, हेरि हेरि हिहनाहिं।
देखि निषाद विषादवश, शिर धुनि धुनि पछिताहिं।

बरबस राम सुमन्त पठाये। सुरसरि तीर आपु चलि...
मांगी नाव न केवट आना। कहै तुम्हार मरम मैं...
जो प्रभु अवसि पारगा चहहू। तौ पद-पदुम पखारन...

पद-पदुम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहिं राम राउरि आनि दशरथ शपथ सब सांची कहौं।
बरु तीर मारहिं लषण पै जब लगि न पांव पखारिहौं।
तब लग न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं।

सुनि केवटके बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुणा-अयन, चितै जानकी लषण तन।

कृपा-सिन्धु बोले मुसुकाई। सोइ करहु जेहि नाव न...
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लै...

ते आनन्द उमँगि अनुरागा। चरण-सरोज पखारन लागा॥

पद-पखारि जल पान करि, आप सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लै पार॥

रि ठाढ़ भये सुर-सरि-रैता। सीय राम गुह लषण समेता॥
ट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभु सकुचे कछु यहि नहिं दीन्हा॥
हियको सिय जानन हारी। मणि मुंदरी मन मुदित उतारी॥
उ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरण गहेउ अकुलाई॥
आजु हम काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
ति वार जो कछु मोहिं देवा। सो प्रसाद मैं शिर धरि लेवा॥
मज्जन करि रघुकुल-नाथा। पूजि पारथी नायउ माथा॥
सुरसरिहिं कहा कर जोरी। मातु मनोरथ पुरवहु मोरी॥
प्रभु गुहहिं कहा घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उर दाहू॥
वचन गुह कह कर-जोरी। बिनय सुनिय रघुकुल-मणि मोरी॥
साथ रहि पंथ दिखाई। करि दिन चारि चरण-सेवकाई॥
वन जाइ रहव रघुराई। पर्ण-कुटी मैं करव सुहाई॥
मो कहँ जस देव रजाई। सो करिहौं रघुवीर दुहाई॥
ज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
गुह ज्ञाति बोलि सब लीन्हे। करि परितोष विदा सब कीन्हे॥

तब गणपति शिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा अनुज सिय सहित वन, गमन कीन्ह रघुनाथ॥

दिन भयउ बिटप तर वासू। लषण सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात-कृत करि रघुराई। तीरथराज दीख प्रभु जाई॥

सचिव सत्य श्रद्धा प्रियनारी। माधव सरिस मीत हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भंडारू। पुण्य प्रदेश देश अति चारू॥
संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अछयवट मुनि-मन मोहा॥
चमर यमुन जल गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥
क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहु जिन प्रतिपक्षि न पावा॥
सेन सकल तीरथ-बर बीरा। कलुष अनीक दलन रणधीरा॥
इहिविधि आइ बिलोकेउ बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्ह शिव-सेवा। पूजि यथा-विधि तीरथ देवा॥
तव प्रभु भरद्वाज पहं आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये॥
कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हा। पूजि प्रेम परिपूरण कीन्हा॥
कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुं अमी के॥
सीय लषण जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल फल खाये॥
तब रघुवर मुनि-सुयश सुहावा। कोटि भांति कहि सबहिं सुनावा॥
सो बड़ सो सब गुणगणगेहू। जेहि मुनीश तुम आदर देहू॥
मुनि रघुवीर परस्पर नवहीं। वचन अगोचर सुख अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयाग-निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दशरथ-सुवन सुहाये॥
राम प्रणाम कीन्ह सबकाहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू॥
देहिं अशीष परम सुख पाई। फिरैं सराहत सुन्दरताई॥

राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग अन्हाइ।
चले लषण सिय जन सहित, मुदित मुनिहिं शिरनाइ॥

राम सप्रेम कहेउ मुनिपाहीं। नाथ कहहु हम केहि मग जाहीं॥

पंथ लागि मुनि शिष्य बुलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये ॥
बहिं रामपद प्रेम अपारा। सबहिं कहहिं मगु दीख हमारा ॥
नि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन बहु जन्म सुकृति सब कीन्हे ॥
रि प्रणाम मुनि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई ॥
बिदा कीन्ह बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि अन्हाने यमुन जल, जो शरीर सम श्याम ॥
नत तीरवासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी ॥
षण राम सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ॥
ति लालसा. सबहिं मन माहीं। नाम ग्राम पूंछत सकुचाहीं ॥
तिन्हमहं वय वृद्ध सयाने। तिन्ह करि युक्ति राम पहिंचाने ॥
कल कथा कहि तिनहिं सुनाई। बनहिं चले पितु आयसु पाई ॥
तब रघुवीर अनेक विधि, सबहिं सिखावन दीन्ह ॥
राम रजायसु शीश धरि, गवन भवन तिन्ह कीन्ह ॥
नि सिय राम लषण कर जोरी। यमुनहिं कीन्ह प्रणाम बहोरी ।
ने सीय सहित दोउ भाई। रवि-तनया-कर करत बड़ाई ॥
थिक अनेक मिलहिं मगुजाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
ज सुलक्षण अंग तुम्हारे। देखि शोच हिय होत हमारे ॥
रग चलहु पयादेहिं पाये। ज्योतिष झूंठ हमारेहि भाये ॥
ाम पन्थ गिरि कानन भारी। तेहि महं साथ नारि सुकुमारी ॥
रि केहरि वन जाहिं न जोई। हम संग चलहिं जो आयसु होई ॥
ब जहां लगि तहं पहुंचाई। फिरब बहोरि तुमहिं शिर नाई ॥
ता लषण सहित रघुराई। गांव निकट जब निकसहिं जाई ॥

सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बि
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकु
स्वामिनि अविनय छमव हमारी। विलगु न मानव जानि
श्यामल गौर किशोरवर, सुन्दर सुषमा ऐन।
सरद सर्वरीनाथमुख, सरद सरोरुह नैन॥
कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को अहैं तु
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मनमंह मुस
तिनहिं विलोकि विलोकेउ धरनी। दुहुं सकोच सकुचत व
सकुचि सप्रेम बाल मृगनैनी। बोली मधुर बचन पि
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे। नाम लषन लघु देवर
बहुरि बदनविधु अंचल ढांकी। पियतन चितै भौंह करि
खंजन मंजु तिरेछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय
आगे राम लषण पुनि पाछे। तापस भेस बिराजत
उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्मजीव विच माया
बहुरि कहौं छबि जस मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बुध विधु विच रोहिणि
तब रघुबर श्रमित सिय जानी। देखि निकट वर सीतल
तहं बसि कन्द मूल फल खाई। प्रात अन्हाइ चले र
देखत बन सर शैल सुहाये। बालमोकि आश्रम प्रभु
राम देखि बन शैल सुहावन। सुन्दर गिरिकानन जल
सरन सरोज विटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुपरस
मुनि कहँ राम दण्वत कीन्हा। आशिर्वाद विप्र वर

न्द मूल फल मधुर मंगाये। सिय सौमित्र राम फल खाये॥
ल्मीकि मन आनँद भारी। मंगल-मूरति नयन-निहारी॥
कर-कमल जोरि रघुराई। बोले वचन श्रवण-सुखदाई॥
ख पांय मुनिराय तुम्हारे। भये सुकृत सब सफल हमारे॥
जहं राउर आयसु होई। मुनि उद्वेग न पावहिं कोई॥
ने तापस जिनते दुख लहहीं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं॥
जिय जानि कहिय सो ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित तहं जाऊँ॥
रचि रुचिर पर्ण-तृण-शाला। वास करौं कछु काल कृपाला॥
ल्मीकि हँसि कहहिं बहोरी। वाणी मधुर अमिय-रस-बोरी॥

राम कहां रहें ?

हु राम अब कहौं निकेता। बसहु जहां सिय लषण समेता॥
के श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
हिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिनके हिये सदन तव रूरे॥
क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा॥
के कपट दम्भ नहिं माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया॥
कि प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी॥
हिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत शरण तुम्हारी॥
हिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिनके उर माहीं॥
ी सम जानहिं परनारी। धन पराय विष ते विष भारी॥
हरषहिं पर-सम्पति देखी। दुखित होहिं परविपति विशेषी॥
हिं राम तुम प्राण पियारे। तिनके उर शुभ सदन तुम्हारे॥
गुण तजि सबके गुण गहहीं। विप्र-धेनु-हित संकट सहहीं॥

नीति-निपुण जिनकी जगलीका। घर तुम्हार तिनके मन
इहि विधि मुनिवर ठाम दिखाये। वचन सप्रेम राम-मन
कह मुनि सुनहु भानुकुल-नायक। आश्रम कहौं समय सुख
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सु
शैल सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग विहँग वि
नदी पुनीत पुराण बखानी। अत्रि-तीय निज तपबल
सुरसरि धार नाम मंदाकिनि। सो सब पातक-पोतक-डा
अत्रि आदि मुनिवर तहं बसहीं। करहिं योग जप तप तनु
चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरि

चित्रकूट महिमा अमित, कही महा मुनिराय॥
आइ नहाने सरितवर, सीय सहित दोउ भाय॥

रघुबर कहेउ लषण भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाह
लषण दीख पय उतर करारा। चहुँ दिशि फिरेउ धनुष जिमि
नदी पनच शर सम दम दाना। सकल कलुष कलिसाउज
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चूक न घात मारु मु
अस कहि लषण ठांव दिखरावा। थल विलोकि रघुपति सुख

रामके पास मुनियों का आगमन

चित्रकूट रघुनन्दन छाये। समाचार, सुनि सुनि मुनि
आवत देखि मुदित मुनि-वृन्दा। कीन्ह दण्डवत रघुकुल
मुनि रघुवरहिं लाइ उर लेहीं। सफल होन-हित आशि
सिय सौमित्र राम छवि देखहिं। साधन सकल सफल करि

अथा योग्य सन्मानि प्रभु, विदा किये मुनि वृन्द ।
करहिं योग जप यज्ञ तप, निज आश्रम स्वच्छन्द ॥

रामलक्ष्मण और सीताका आचरण

छिन छिन लखि सिय-राम-पद, जानि आपुपर नेह ॥
करत लषण सपने न चित, बन्धु मातु पितु गेह ॥
संग सिय रहहिं सुखारी । पुरपरिजन गृह सुरति बिसारी ॥
साथ साथरी सुहाई । मयन-शयन-शत-सम सुखदाई ॥
रूप होहिं बिलोकत जासू । तेहि किमि मोहै विषय बिलासू ॥
सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृण सम विषय बिलासु ॥
रामप्रिया जगजननि सिय, कछुक न अचरज तासु ॥
वहिं प्रभु सिय अनुजहिं कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥
हिं लषण सीय रघुबीरहिं । जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ॥
बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । खग मृग सुर तापस-हितकारी ॥
उँ राम बनगमन सुहावा । सुनहु सुमन्त अवध जिमि आवा ॥

रामवियोगका शोक

उ निषाद प्रभुहिं पहुंचाई । सचिव सहित रथ देखेउ आई ॥
बिकल बिलोकि निषादू । कहि न सकहिं जस भयउ बिषादू ॥
राम सिय लषण पुकारी । परेउ धरणितल व्याकुल भारी ॥
दक्षिण दिसि हय हिहिनाहीं । जिमि बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ॥
नहिं तृण चरहिं न पियहिं जल, मोचत लोचन-बारि ॥
व्याकुल भयेउ निषाद-पति, रघुबर बाजि निहारि ॥
धीरज तब कहहि निषादू । अब सुमन्त परिहरहु बिषादू ॥

तुम पण्डित परमारथज्ञाता। धरहु धीर लखि वाम विधा
विविध कथा कहि कहि मृदुबानी। रथ वैठारेउ बरबस आ
शोक शिथिल रथ सकहि न हांकी। रघुवर-विरह पीर उर बां

भये निषाद विषादवस, देखत सचिव तुरंग॥
वोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग॥

गुह सारथिहिं फिरेउ पहुंचाई। विरह विषाद वरणि नहिं ज

विप्र-विवेकी वेदविद, सम्मत साधु सुजाति॥
जिमि धोखे मदपान करि, सचिव शोक तेहि भांति॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता कर्म्म मनबा
रहइ कर्म्मवस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुण
इहि विधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथ आ
विदा किये करि विनय निषादू। फिरे पांय परि विकल वि
अवध प्रवेश कीन्ह अंधियारे। पैठु भवन रथ राखि दु
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूपद्वार रथ देखन
अति आरत सब पूँछहिं रानी। उतर न आव विकल भई
सुनै न श्रवण नयन नहिं सूझा। कहहु कहां नृप जेहिं तेहिं
दासिन दीख सचिव विकलाई। कौशल्या गृह गई लि

दशरथका विलाप और स्वर्गवास

जाइ सुमन्त दीख कस राजा। अमिय रहित जनु चन्द्र विरा
अशन न शयन विभूषण-हीना। परेउ भूमि तन निपट मलि
को कहि सकइ भूप विकलाई। रघुवरविरह अधिक अधि
राम राम कहि राम सनेही। पुनि कह राम लषण वै

देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेसि दण्डप्रणाम ॥
सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त कहँ राम ॥

...प सुमन्त लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
...हित सनेह निकट वैठारी। पूँछत राउ नयनभरि बारी ॥
...म रूप गुण-शील-सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर शोचत राऊ ॥

सखा राम सिय लषण जहँ, तहाँ मोहिं पहुंचाउ ॥
नाहित चाहत चलन अब, प्राण कहौं सतिभाउ ॥

...नि पुनि पूंछत मंत्रिहिं राऊ। प्रीतम सुवनसंदेश सुनाऊ ॥
...हु सखा सोइ करिय उपाऊ। राम लषण सिय वेगि दिखाऊ ॥
...चिव धीर धरि कहि मृदुबानी। महाराज तुम पण्डित ज्ञानी ॥
...र सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाज सदा तुम सेवा ॥
...न्म मरण सब सुख दुख भोगा। हानिलाभ प्रिय मिलन वियोगा ॥
...ल कर्मवश होहि गुसांई। बरवश राति दिवसकी नाईं ॥
...ख हर्षहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
...रज धरहु विवेक बिचारी। छाड़िय सोच सकल हितकारी ॥
...कल विलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर वचन धरि धीरा ॥
...त प्रणाम तातसन कहेऊ। बार बार पदपंकज गहेऊ ॥
...व पायँ परि विनय बहोरी। तात करिय जनि चिन्ता मोरी ॥
...जन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायहु विनती मोरी ॥
...इ सब भांति मोर हितकारी। जाते रह नर-नाह सुखारी ॥
...व संदेश भरतके आये। नीति न तजब राजपद पाये ॥
...लहु प्रजहिं कर्म-मन-ग्यानी। सेवहु मातु सकल सम जानी ॥

और निवाहब भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवका
तात भांति तेहि राखव राऊ। शोच मोर जेहि करहिं न का
लषण कहेउ कछु वचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहिं निहो
वार बार निज सपथ दिवाई। कहव न तात लषण लरि
सुनत सुमंत-वचन नरनाहू। परेउ धरणि उर दारुण दा
करि विलाप सब रोवहिं रानी। महाविपति किमि जाइ बखा
सुनि विलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहूकर धीरज भा

भयहु कुलाहल अवध अति, सुनि नृपरानिन शोर॥
विपुल विहँग वन परेउ निशि, मानहु कुलिश कठोर॥

प्राण कंठगत भयउ भुवालू। मणिविहीन जिमि व्याकुल व्या
कौशिल्या नृप देखि मलाना। रविकुल रवि अथयें जिय जा
उर धरि धीर राम महतारी। बोली वचन समय अनुहा
जो जिय धरिय विनय पिय मोरी। राम लषण सिय मिलब बहो

प्रियावचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आंखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत शीतल वारि॥

धरि धीरज उठि वैठ भुवालू। कहु सुमन्त कहँ राम कृपा
कहां लषण कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्रवधू वैदे
विलपत राउ विकल बहु भांती। भई युग सरिस सिराति न रा
तापस-अन्ध-शाप सुधि आई। कौशिल्यहिं सब कथा सु
हा रघुनन्दन प्राण पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बी
हा जानकी लषण हा रघुवर। हा पितु-हित-चित-चातक-जल

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम॥
तनु परिहरि रघुवर-विरह, राउ गयउ सुरधाम॥

शोक-विकल सब रोवहिं रानी। रूप-शील-बल-तेज बखानी॥
करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल वारहिं वारा॥
तब वशिष्ठ मुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास॥
शोक निवारेउ सकलकर, निज विज्ञान प्रकास॥
तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बुलाइ वहुरि अस भाषा॥

भरतका आगमन और शोक

धावहु वेगि भरतपहं जाहू। नृप सुधि कतहुं कहहु जनि काहू॥
इतनै कहेउ भरत सन जाई। गुरु बुलाइ पठये दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाये। चले वेगि वर वाजि लजाये॥
अनरथ अवध अरंभेउ जवते। कुशकुन होहिं भरत कहँ तव ते॥
इहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुंचे जाइ।
गुरु अनुशासन श्रवण सुनि, चले गणेश मनाइ॥
चले समीर वेगि हय हांके। लांघत सरित शैल वन बांके॥
हृदय शोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष वर्ष सम जाई। इहि विधि भरत अवध नियराई॥
अशकुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुं सबनि सब सम्पति हारी॥
आवत सुत सुनि केकय-नन्दिनि। हरषी रवि-कुल जल-रुह-चंदिनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन ले आई॥
भरत दुखी परिवार निहारी। मानहु तुहिन वनज-वन मारी॥
कैकेयी हर्षित इहि भांती। मनहु मुदित दवलाइ किराती॥
सुतहिं सकोच देखि मनमारे। पूछति नैहर कुशल हमारे॥

सकल कुशल कह भरत सुनाई। पूछो निज कुल कुशल भलाई

सुनि सुत-वचन सनेहमय, कपट-नीर भरि नैन।

भरत श्रवण मन शूल सम, पापिन बोली बैन॥

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय विचारी

कछुक काज विधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपतिपुर पगु धारेउ

सुनत भरत भयो विवश विषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा

तात तात हा तात पुकारी। परेउ भूमि-तल व्याकुल भारी

चलत न देखत पायउँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेउ मोहीं

बहुरि धीर धरि उठे संभारी। कहु पितु-मरण हेतु महतारी

सुनि सुतवचन कहत कैकेई। मर्म पाछि जनु माहुर देई

आदिहिं ते सब आपनि करणी। कुटिल कठोर मुदित मन वरणी

भरतहिं विसरेउ पितुमरण, सुनत राम-वन-गौन॥

हेतु अपन पुनि जानि जिय, चकित रहे धरि मौन॥

विकल विलोकि सुतहिं समुझावति। मनहुं जरेपर लोन लगावति

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारा। पाके क्षत जनु लागु अंगारा

भरतका माताको धिक्कारना

धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भांति कुल नासा

वर मांगत मन भई न पीरा। जरि न जीह मुँह परे न कीरा

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरण-काल विधि मति हरि लीन्ही

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिसि कछु न बसाई

मन्थरापर शत्रुघ्नका कोप

तेहि अवसर कुबरी तंह आई। वसन विभूषण विविध बनाई

मकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा॥
बर टूटेउ फूट कपारू। दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू॥
नि रिपुहन लखि नख शिख खोटी। लगे घसीटन धरिधरि झोटी॥
रत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई। कौशल्या पहँ गे दोउ भाई॥

भरतका शोक और कौशल्याका धीरज देना

मलिन वसन विवरण विकल, कृश शरीर दुख भार॥
कनक कमल वर बेलि वन, मानहु हनी तुषार॥

रतहिं देखि मातु उठि धाई। मूर्च्छित अवनि परी अकुलाई॥
खत भरत विकल भये भारी। परे चरण तनु दशा विसारी॥
तु सुरपुर वन रघुकुलकेतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥

मातु भरतके वचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि॥
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति वारि॥

रत सुभाय मातु उर लाये। अतिहित मनहु राम फिरि आये
टेउ बहुरि लषण लघु भाई। शोक सनेह न हृदय समाई॥
ता भरत गोद बैठारे। आंसु पोंछि मृदु वचन उचारे॥
जहु बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमय समुझि शोक परिहरहू॥

कौशल्याके वचन सुनि, भरत सहित रनिवास॥
व्याकुल बिलपत राज गृह, मानहु शोकनिवास॥

लपहिं विकल भरत दोउ भाई। कौशल्या लिय हृदय लगाई॥
ति अनेक भरत समुझाये। कहि विवेक वरवचन सुनाये॥
रतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुराण-श्रुति-कथा सुनाई॥

भरतका सौगन्द खाना

छलविहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुगपानी॥
जे अघ मातु पिता गुरु मारे। गाइ-गोठ महि-सुरपुर जारे॥
जे अघ तिय-बालक बध कीन्हे। मीत-महीपति माहुर दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीं। कर्म बचन मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहिं होहु बिधाता। जो यह होइ मोर मत माता॥

जे परिहरि हरि-हर-चरण, भजहिं भूतगन घोर॥
तिन्हकी गति मोहिं देउ बिधि, जो जननी मत मोर।

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं। पिशुन पराव पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। वेद-विदूषक विश्व-विरोधी॥
लोभी लंपट लोल लवारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
पावउँ मैं तिनकर गति घोरा। जो जननी यह सम्मत मोरा॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ-पथ विमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनुपाई। जिनहिं न हरिहर-सुयश सुहाई॥
तजि श्रुति-पंथ वामपथ चलहीं। बंचक बिरचि भेष जग छलहीं॥
तिन्ह कै गति शंकर मोहिं देऊ। जननी जो यह जानौं भेऊ॥
करत विलाप विपुल यहि भांती। वैठे बीति गई सब राती॥

दशरथकी अन्त्येष्टिक्रिया

वामदेव वशिष्ठ मुनि आये। सचिव महाजन सकल बुलाये॥
मुनि बहु भांति भरत उपदेशे। कहि परमारथ बचन सुदेशे॥

तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आज॥
उठे भरत गुरुवचन सुनि, करन कहेउ सब काज॥

नृपतनु वेद-विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमान बनावा॥
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं राम दरशन अभिलाषी॥
चन्दन-अगर भार बहु ल्याये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाये॥
सरयु-तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर-सोपान सुहाई॥
यहि विधि दाह-क्रिया सब कीन्ही। विधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्ही॥
पितुहित भरत कीन्ह जसि करणी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरणी॥
सुदिन शोधि मुनिवर तहं आये। सकल महाजन सचिव बुलाये॥
बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई॥
भरत वशिष्ठ निकट बैठारे। नीति धर्ममय वचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिवर वरणी। कैकेयि कठिन कीन्ह जस करणी॥
भूप धर्मव्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा॥
कहत रामगुणशील सुभाऊ। सजल नयन पुलके मुनिराऊ॥
बहुरि लषण सिय प्रीति बखानी। शोक सनेह मगन मुनि ज्ञानी॥

सुनहु भरत भावी प्रबल, विलखि कहेउ मुनिनाथ॥
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ॥

अस विचारि केहि दीजिय दोषू। व्यर्थ काहिपर कीजिय रोषू॥

शोचनीय कौन है ?

तात विचार करहु मनमाहीं। शोच योग्य दशरथ नृप नाहीं॥
शोचिय विप्र जो वेदविहीना। तजि निज धर्म विषय लवलीना॥
शोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राणसमाना॥
शोचिय वैश्य कृपण धनवानू। जो न अतिथि शिवभक्ति सुजानू॥

शोचिय शूद्र विप्र अपमानी। मुखर मानप्रिय ज्ञान गुमानी
शोचिय पुनि पतिवंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी
शोचिय वटु निज व्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई
शोचिय गृही जो मोहवस, करै धर्मपथ त्याग॥
शोचिय यती प्रपंचरत, विगत-विवेक--विराग॥
वैखानस सोइ शोचन योगू। तप विहाय जेहि भावे भोगू
शोचिय पिशुन अकारण क्रोधी। जननि-जनक-गुरु-वन्धु विरोधी
सब विधि शोचिय पर-अपकारी। निज तनु-पोषक निर्दय भारी
शोचनीय सब ही विधि सोई। जो न छांड़ि छल हरिजन होई
शोचनीय नहिं कोशल-राऊ। भुवन चारिदश प्रगट प्रभाऊ

वशिष्ठका उपदेश

यह सुनि समुझि शोच परिहरहू। शिरधरि राज रजायसु करहू
अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु-बैन।
ते भाजन सुख सुयशके, बसहिं अमरपति-ऐन॥
करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर वचन हित-जानी
सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पण्डित तेही
कौशल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा-सुख होहिं सुखारी
मर्म तुम्हार राम सब जानहिं। सो सब विधि तुमसन भल मानहिं
सौंपेउ राज रामके आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये
कौशल्या धरि धीरज कहई। पुत्र पिता-गुरु-आयसु अहई
सो आदरिय करिय हित मानी। तजिय विषाद काल-गति जानी
वन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम इहि भांति तात कदराहू

परिजन-प्रजा सचिव कह अंबा। तुमहीं सुत सबकर अवलंबा॥

भरतका उत्तर

भरत कमल-कर जोरि, धर्म धुरन्धर धीर धरि॥
वचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं॥

मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव सम्मत सबहीका॥
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा। अवशि शीश धरि चाहिय कीन्हा॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित वानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी॥
अब तुम विनय मोरि सुनि लेहू। मोहिं अनुहरत सिखावन देहू॥
उत्तर देउँ क्षमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

पितु सुरपुर सिय-राम वन, करन कहहु मोहिं राज।
इहिते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सरुजशरीर वादि सब भोगा। विनु हरिभक्ति जाय जप योगा॥
जाय देह विनु जीव सुखाई। वादि मोर सब विनु रघुराई॥
जाउं राम पहं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू॥
मोहिं राज्य हठि देहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहिं समान को पापनिवासी। जेहि लगि सीय-राम-वनवासी॥
राव रामकहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा॥
मैं शठ सब अनरथकर हेतू। बैठि बात सब सुनहुं सचेतू॥

राममातु सुठि सरल चित, मोपर प्रेम विशेषि॥
कहहिं सुभाव-सनेह-बस, मोरि दीनता देषि॥

गुरु विवेक-सागर जग जाना। तिनहिं विश्व कर बदर समाना॥
मोकहँ तिलक साज सजि सोऊ। भा विधि विमुख विमुख सब कोऊ॥
आपनि दारुण दीनता, सबहि कहेउँ समुझाय।
देखे बिनु रघुवीरपद, जियकी जरनि न जाय॥
आन उपाय मोहिं नहिं सूझा। को जियकी रघुवर बिनु बूझा॥
एकहिं आंक इहै मन माहीं। प्रात काल चलिहौं प्रभु पाहीं॥
भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे। राम-सनेह सुधा सम पागे॥
मातु-सचिव-गुरु-पुर-नरनारी। सकल सनेह विकल भे भारी॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्राण-समान-राम-प्रिय अहहू॥
जो पामर आपनि जड़ताई। तुमहिं सुगाई मातु-कुटिलाई॥
सो सठ कोटिन पुरुष समेता। वसहिं कल्प शत नरक-निकेता॥
अवशि चलिय वन रामपहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह॥
शोकसिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह॥
भा सबके मन मोद न थोरा। जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा॥
घर घर वाहन साजहिं नाना। हर्षहिं हृदय प्रभात पयाना॥

वनकी तैयारी

भरत जाइ मन कीन्ह विचारू। नगर वाजि गज भवन भंडारू॥
सम्पति सब रघुपति कै आही। जो बिनु यत्न चलौं तजि ताही॥
तो परिणाम न मोरि भलाई। पाप-सिरोमणि सांइ दुहाई॥
करहि स्वामिहित सेवक सोई। दूषण कोटि देइ किन कोई॥
जागत सब निशि भयउ विहाना। भरत बुलाये सचिव सुजाना॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। वनहिं देव मुनि रामहिं राजू॥

वेगि चलहु मुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरंग रथ नाग संवारे॥
अरुन्धती अरु अग्नि समाजू। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराजू॥
विप्रवृन्द चढ़ि वाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥
नगर लोग सब सजि सजि यांना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
शिविका सुभग न जाइ बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥

सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहिं चलाइ॥
सुमिरि राम सिय चरण तब, चले भरत दोउ भाइ॥

वन सियराम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय-गज-रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम-मातु मृदुवाणी बोली॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवार दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलहिं सब लोगू। सकल शोककृश नहिं मगयोगू॥
शिरधरि वचन चरण शिर नाई। रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति-तीर निवासू॥
सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगवेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय विचारि करै सविषादा॥
कारण कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपट भाव मन माहीं॥

अस विचारि गुह ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु।
अथवा सहु बोरहु तरणि, कीजिय घाटारोहु॥

होइ सजग सब रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरण कर ठाटा॥
सन्मुख लोह भरत सन लेहू। जियत न सुरसरि उतरन देहू॥
समर-मरन पुनि सुरसरि-तीरा। रामकाज क्षण-भंगु शरीरा॥

भरतभाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग्य अस पाइय मीचू॥
स्वामिकाज कीन्हे रण-रारी। लेइहौं सुयश भुवन दशचारी॥

गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउ मर्म मिलि जाइ॥
बूझि मित्र अरि मध्यगति, तब तस करब उपाइ॥

लखब सनेह सुभाव सुहाये। वैर प्रीति नहिं दुरति दुराये॥
अस कहि भेंट संजोवन लागे। कन्द मूल फल खग मृग मांगे॥
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन आने॥
सकल साज सजि मिलन सिधाये। मंगल मूल शकुन शुभ पाये॥
देखि दूरते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीशहिं दण्ड प्रणामू॥
जानि राम प्रिय दीन्ह अशीशा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीशा॥
रामसखा सुनि स्यन्दन त्यागा। चले उतरि उँमगत अनुरागा॥
गांव जाति गुह नांव सुनाई। कीन्ह जुहारि माथ महि लाई॥

करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ॥
मनहु लषण सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥

भेंटे भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेमकी रीती॥
धन्य धन्य ध्वनि मंगल-मूला। सुर सराहि तेहिं बरषहिं फूला॥

श्वपच सबर खल यवन जड़; पामर कोल्ह किरात॥
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

राम सखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूँछहिं कुशल सुमंगल क्षेमा॥
देखि भरत कर शील सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू॥
सकुचि सनेह मोद मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत इकटक ठाढ़ा॥
धरि धीरज पद वन्दि बहोरी। विनय सप्रेम करत करजोरी॥

कुशल-मूल पद-पंकज पेखी। मैं तिहुं काल कुशल निज देखी॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जुहारी रानी॥
जानि लषण सम देहिं असीसा। जियहु सुखी सौलाख बरीसा॥

सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ॥
घर तरु-तर सर बाग वन, बास बनायउ जाइ॥

सृंगवेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहवस अंग शिथिल तब॥
एहि विधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जग-पावनि गंगा॥
रामघाट कहं कीन्ह प्रणामा। भा मन मगन मिले जनु रामा॥
करहिं प्रणाम नगर-नर-नारी। मुदित ब्रह्ममय वारि निहारी॥
करि मज्जन मांगहिं कर-जोरी। रामचन्द्र-पद-प्रीति न थोरी॥
गुरुसेवा करि आयसु पाई। राम-मातु पहँ गे दोउ भाई॥
चरण चापि कहि कहि मृदुबानी। जननी सकल भरत सनमानी॥
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई। आप निषादहिं लीन्ह बुलाई॥
चले सखा करसों कर जोरे। शिथिल शरीर सनेह न थोरे॥
पूछत सखहिं सो ठाँव दिखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहं सिय राम लषण निशि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये॥
भरत वचन सुनि भयउ विषादू। तुरत तहां लै गयेउ निषादू॥
कुश-साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रणाम प्रदक्षिण लाई॥
चरण-रेख-रज आंखिन्ह लाई। बनै न कहत प्रीति अधिकाई॥
एहि विधि राति लोग सब जागा। भा भिनुसार उतारा लागा॥
गुरुहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई॥
दण्ड चारि महँ भा सब पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा॥

प्रात-क्रिया करि मातु-पद, बन्दि गुरुहिं शिर नाइ॥
आगे किये निषाद-गण, दीन्हेउ कटक चलाइ॥

किये निषाद-नाथ अगुआई। मातु-पालकी सकल च[illegible]
साथ बुलाइ भाइ लघु दीन्हा। विप्रन सहित गवन गुरु की[illegible]
आप सुरसरिहिं कीन्ह प्रणामू। सुमिरे लषण सहित सिय रा[illegible]
गवने भरत पयादेहिं पाये। कोतल संग जाहिं डोरिअ[illegible]

भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेश प्रयाग॥
कहत रामसिय रामसिय, उमँगि उमँगि अनुराग॥

झलका झलकत पांयन कैसे। पंकज-कोश ओस-कण [illegible]
भरत पयादेहि आये आजू। देखि दुखित सुनि सकल सम[illegible]
खबरि लीन्ह सब लोग अन्हाये। कीन्ह प्रणाम त्रिवेणी [illegible]
सविधि सितासित नीर अन्हाने। दिये दान महिसुर सन[illegible]
देखत श्यामल धवल हिलोरे। पुलक शरीर भरत कर [illegible]
सकल काम प्रद तीरथ राऊ। वेद-विदित जग प्रगट प्र[illegible]
माँगौं भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करहिं कुक[illegible]

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रति राम-पद, यह वरदान न आन॥

भरद्वाजाश्रममें भरत

सुनत राम-गुण-गान सुहाये। भरद्वाज मुनिवर पहँ [illegible]
दण्ड प्रणाम करत मुनि देखे। मूरतिवन्त भाग्य निज [illegible]
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्ह अशीश कृतारथ की[illegible]

ासन दीन्ह नाइ शिर बैठे। चहत सकुचि गृह जनु भजि पैठे॥
ुनि पूछब कछु यह बड़ शोचू। बोले ऋषि लखि शील सँकोचू॥
ुनहु भरत हम सब सुधिपाई। बिधि-करतब पर कछु न बसाई॥

तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति॥
तात कैकयिहिं दोष नहिं, गई गिरा मति धूति॥
अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहिं उचित मत एहु॥
सकल सुमंगल मूल जग, रघुवर-चरण सनेहु॥
पुलक गात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नैन॥
करि प्रणाम मुनि मंडलिहिं बोले गदगद बैन॥

ुनि-समाज अरु तीरथराजू। सांचेहु शपथ अघाइ अकाजू॥
हि थल जो कछु कहिय बनाई। तेहि सम नहिं कछु अघ अधमाई॥
ह दुख दाह दहै नित छाती। भूख न बासर नींद न राती॥
हि कुरोगकर औषधि नाहीं। शोधेउँ सकल विश्व मनमाहीं॥
ेटै कुयोग राम फिरि आये। बसहिं अवध नहिं आन उपाये॥
रतवचन सुनि मुनि सुख पाई। सबहि कीन्ह बहु भांति बड़ाई॥
ात करहु जनि शोच विशेषी। सब दुख मिटहि राम-पद देखी॥
ुनि मुनिबचन भरत हिय सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सकोचू॥
ानि गरुअ गुरु-गिरा बहोरी। चरण बन्दि बोले करजोरी॥
ार धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा॥
रत-वचन मुनिवर मन भाये। शुचि सेवक शिष निकट बुलाये॥
ाहिय कीन्ह भरत पहुनाई। कन्दमूल फल आनहु जाई॥
ले नाथ कहि तिन सिर नाये। प्रमुदित निजनिज काज सिधाये॥

मुनिहिं शोच पाहुन बड़ नेवता। तस पूजा चाहिय जस देइ
सुनि ऋधि-सिधि अणिमादिक आईं। आयसु होइ सो करै गुसा
कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहिं शिर सहित स
ऋषि आयसु आशिष शिर राषी। करि दण्डवत विनय बहु भा
पथगत-कुशल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहिं चित दं
रामसखा कर दीन्हे लागू। चलत देहधरि जनु अनु
नहिं पद-त्राण शीश नहिं छाया। प्रेम नेम व्रत धम अमा
लषण-राम-सिय-पंथ-कहानी। पूँछत सखहिं कहत मृदु
राम-वास-थल विटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रो
यमुनतीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहिं सु
रातहिं घाट घाटकी तरणीं। आईं अगनित जाइ न ब
प्रात पार भे एकहि खेवा। तोषे रामसखा करि से
चले अन्हाइ नदिहिं सिर नाई। साथ निषाद-नाथ ल
आगे मुनिवर वाहन आछे। राज-समाज जाइ सब प
तेहि पाछे दोउ बन्धु पयादे। भूषण—वसन भेष सुठि स
सेवक सुहृद सचिव-सुत साथा। सुमिरत लषण सीय रघुना
जहँ जहँ राम वास विश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रणा

मगुवासी नर-नारि सुनि, धाम काज तजि धाइ॥
देखि स्वरूप सनेहवस, मुदित जन्मफल पाइ॥
भरत दरश देखत खुलेउ, मगु-लोगन्ह कर भाग॥
जनु सिंहलवासिन्ह भयउ, विधिवश सुलभ प्रयाग॥

निज गुण सहित रामगुण गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुना

रथ मुनि-आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रणामा॥
नहीं मन मांगहिं बर एहू। सीय-राम-पद-पद्म सनेहू॥
मलहिं किरात कोल्ह बनवासी। वैखांनस, वटु यती उदासी॥
रि प्रणाम पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लषण राम वैदेही॥
प्रभु-समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जन्म-फल लहहीं॥
सकल सनेह-शिथिल रघुवरके। गये कोस दुइ दिनकर ढरके॥
जल-थल देखि बसे निशि बीते। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीते॥

सीताजीका स्वप्न

उहां राम रजनी अवशेषा। जागी सीय स्वप्न अस देषा॥
सहित समाज भरत जनु आये। नाथ वियोग ताप तनु ताये॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय-स्वप्न भरे जललोचन। भये शोचवश शोक विमोचन॥
लषण स्वप्न यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बन्धु समेत अन्हाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

सनमानि सुरमुनि बन्दि बैठे उतर दिशि देखत भये॥
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आश्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारण काह चित चकित रहे॥
सब समाचार किरात कोल्हन आइ तेहि अवसर कहे॥

रामकी चिन्ता और लक्ष्मणके विचार

बहुरि शोचवश भे सियरमनू। कारण कवन भरत आगमनू॥
लषण लखेउ प्रभु हृदय खंभारू। कहत समय सम नीति विचारू॥

बिनु पूँछे कछु कहउँ गुसाँईं। सेवक समय न ढीठ ढिठाईं
विषयी जीव पाय प्रभुताई। मूढ़ मोहवश मोहिं जनाई
भरत नीतिरत साधु सुजाना। प्रभु-पद-प्रेम सकल जग जाना
तेऊ आज राज-पद पाई। चले धर्म मरयाद मिटाई
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी। जानि राम वन-वास एकाकी
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करन अकण्टक राजू
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई
जो जिय होत न कपट कुचाली। केहि सुहात रथ वाजि गजाली
भरतहिं दोष देइ को जाये। जग बौराइ राज-पद पाये
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु-रण-रंच न राखब काऊ
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई
इतना कहत नीति रसभूला। रण-रस-विटप फूल जिमि फूला
प्रभुपद वन्दि शीश रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी
कहँ लगि सहिय रहिय मनमारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे

क्षत्रि जाति रघुकुल जनम, राम-अनुज जग जान॥
लातहु मारे चढ़त शिर, नीच को धूरि समान॥

उठि कर जोरि रजायसु मांगा। मनहुं वीर-रस सोवत जागा
बांधि जटा शिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा
आजु रामसेवक यश लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ
जिमि करि-निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू
तैसहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता
जग भा मगन गगन भै बानी। लषण बाहु-बल बिपुल बखानी

हृसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं॥
नि सुर-वचन लषण सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
ही तात तुम नीति सुहाई। सबते कठिन राज-मद भाई॥

भरतहिं होइ न राज-मद, विधि हरि हर-पद पाइ॥
कबहुं कि कांजी सीकरहिं, क्षीर सिन्धु विनसाइ॥

षण तुम्हार सपथ पितु-आना। शुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
हत भरत गुण शील सुभाऊ। प्रेम-पयोधि-मगन रघुराऊ॥

सुनि रघुवर-वाणी विबुध, देखि भरत-पर हेतु॥
लगे सराहन रामसों, प्रभु को कृपा-निकेत॥

हाँ भरत सब सहित सुहाये। मंदाकिनी पुनीत अन्हाये॥
रिस समीप राखि सब लोगा। मांगि मातु-गुरु-सचिव नियोगा॥
ले भरत जहं सिय रघुराई। साथ निषाद-नाथ लघु भाई॥
मुझि मातु-करतब सकुचाहीं। करत कुतर्क कोटि मन-माहीं॥
म लषण सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

मातु मते महं जानि मोहिं, जो कुछ कहहिं सो थोर॥
अघ अवगुण तजि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥

खि भरत-कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू॥
रत दीख वन शैल समाजू। मुदित क्षुधित जनु पाइ सुनाजू॥
ति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविधि ताप-पीड़ित ग्रह भारी॥
इ सुराज सुदेश सुखारी। भई भरत-गति तेहि अनुहारी॥
म-वास वन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
चिव विराग विवेक नरेशू। विपिन सुहावन पावन देशू॥

भट कमनीय शैल रजधानी। शांति सुमति शुचि सुन्दरि रा[illegible]
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ। रामचरण आश्रित चित चा[illegible]

जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुआल॥
करत अकण्टक राज्यपुर, सुख सम्पदा सुकाल॥
राम-शैल-शोभा निरखि, भरत-हृदय अति प्रेम।
तापस तप-फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥

तब केवट ऊंचे चढ़ि जाई। कहा भरत सन भुजा उ[illegible]
नाथ देखियंत विटप विशाला। पाकर जम्बु रसाल तमा[illegible]
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य वट सोहा। मंजु विशाल देखि मन मो[illegible]
नील सघन पल्लव फल लाला। अविचल छांह सुखद सब का[illegible]
सखा-वचन सुनि विटप निहारी। उमँगेउ भरत बिलोचन वा[illegible]
करत प्रणाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति शारद सकुच[illegible]
सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषण सघन वन [illegible]
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन। सकल सुमंगल-सदन सुहा[illegible]

भरतकी रामसे भेंट

करत प्रवेश मिटा दुख दावा। जनु योगी परमारथ पा[illegible]
देखे लषण भरत प्रभु आगे। पूछत वचन कहत अनुरा[illegible]

लसत मंजु मुनि-मण्डली, मध्य सीय रघुनन्द॥
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥

सानुज सखा समेत मगन मन। विसरे हर्ष शोक सुख दुख [illegible]
पाहि पाहि कहि पाहि गुसांई। भूतल परे लकुटकी [illegible]
बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रणाम भरत जियजा[illegible]

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रणाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम-अधीरा। कहुं पट कहुं निषंग धनुतीरा॥

बरबस लिये उठाय उर, लाये कृपानिधान॥
भरत रामकी मिलनि लखि, बिसरेउ सबहिं अपान॥
मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटे राम॥
भूरि भाग्य भेंटे भरत, लक्ष्मण करत प्रणाम॥

भेंटेउ लषण ललकि लघुभाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगण दोउ भाइन बन्दे। अभिमत आशिष पाइ अनन्दे॥
सानुज भरत उमँगि अनुरागा। धरि शिर सियपद-पदुम-परागा॥
पुनि पुनि करत प्रणाम उठाये। सिय करकमल परसि बैठाये॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पाणि विनवत प्रणाम करि॥

नाथ साथ मुनिनाथके, मातु सकल पुरलोग॥
सेवक सेनप सचिव सब, आये विकल वियोग॥

रामकी गुरुभक्ति

शील-सिन्धु सुनि गुरु-आगमनू। सीय समीप राखि रिपुदमनू॥
चले सवेग राम तेहि काला। धीर धरमधर दीनदयाला॥
गुरुहिं देखि सानुज अनुरागे। दण्डप्रणाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमँगि भेंटे दोउ भाई॥

वशिष्ठजी केवटसे मिले

प्रेमपुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरिते दण्ड प्रणामू॥
राम-सखा ऋषि बरबस भेंटे। जनु महि लुटत सनेह समेटे॥

जेहि लखि लषणहुंते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ ॥
सो सीतापति-भजनको, प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥
आरन लोग राम सब जाना। करुणाकर सुजान भगवाना॥
सानुज मिलि पल महँ सबकाहू। कीन्ह दूरि दुख दारुण दाहू॥
मिलि केवटहिं उमँगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥

रामको उदारता

प्रथम राम भेंटे कैकेयी। सरल स्वभाव भक्ति मति भेयी॥
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। कालकर्मविधि सिरधरि खोरी॥
भेंटे रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष ॥
अस्वईश आधीन जग, काहु न देइय दोष ॥
गुरु-तियपद बन्दे दोउ भाई। सहित विप्रतिय जे संग आई॥
गंग गौरि सम सब सन्मानी। देहिं अशीष मुदित मृदुबानी॥
पुरजन पाइ मुनीश नियोगू। जलथल तकि तकि उतरे लोगू॥
महिसुर मंत्री मातु गुरु, घने लोग लिये साथ ॥
पावन आश्रम गमन किय, भरत लषण रघुनाथ ॥
सीय आइ मुनिवर पगलागी। उचित अशीष लही मन मांगी॥
गुरुपत्निहिं मुनितियन्ह समेता। मिलि सप्रेम कहि जाइ न जेता॥
वन्दि बन्दि पद सिय सबहीके। आशिष वचन लहे प्रिय जीके॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदेउ नयन सहमि सुकुमारी॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिर नाई। तेहि अवसर करुणा महि छाई॥

लगिं लगि पग सबन सिय, भेंटति अति अनुराग ॥
हृदय असीषहिं प्रेमबश, रहिहो भरी सुहाग ॥
विकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुरु ज्ञानी ॥
प्रथम कही जगगति मुनिनाथा। कहेउ कछुक परमारथ-गाथा ॥
नृपकर सुरपुर गमन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा ॥
मुनिवर बहुरि, राम समुझाये। सहित समाज सुसरित अन्हाये ॥
व्रत निरम्बु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहुं कहे जल काहु न लीन्हा ॥

भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह ॥
श्रद्धा भक्ति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥

करि पितुक्रिया वेद जस वरणी। भे पुनीत पातक तम-तरणी ॥
शुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते ॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कन्द मूल फल अम्बु अहारी ॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहिं पल जिमि युग जाता ॥
सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहां अमरावति राऊ ॥
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गुसाँई ॥

धर्महेतु करुणायतन, कस न कहहु अस राम ॥
लोग दुखित दिन दुइ दरश, देखि लहहिं विश्राम ॥

रामवचन सुनि समय समाजू। जनु जल निधि महं विकल जहाजू ॥
सुनि मुनिगिरा सुमंगल मूला। भयहु मनहु मारुत अनकूला ॥
कीन्ह किरात भिल्ल बनवासी। मधु शुचि सुन्दर स्वादु सुधासी ॥
भरि भरि पर्णकुटी रचि रूरी। कन्द मूल फल अंकुर जूरी ॥
सबहिं देहिं करि विनय प्रणामा। कहि कहि स्वाद भेद गुण नामा ॥

देहि लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दुहाई देहीं॥
कह जिय जानि सकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु॥
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृण अंकुर लेहु॥
तुम प्रिय पाहुन वन पगु धारे। सेवा योग्य न भाग्य हमारे॥
देव कहा हम तुमहिं गुसाईं। ईंधन पात किरात मिताईं॥
यह हमार अति बड़ सेवकाई। लेहिं न बासन वसन चुराई॥
हम जड़ जीव जीव-गण-घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निशिबासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धर्म्म बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दनदरश-प्रभाऊ॥
विहरहिं वन चहुँ ओर, प्रति दिन प्रमुदित लोग सब॥
जल जिमि दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम॥
लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछिताइ अघाई॥
अब जिय महँ याचति कैकेई। महि न बीचु विधु मीचु न देई॥
यह संशय सबके मन माहीं। राम गवन विधि अवध कि नाहीं॥

भरतकी चिन्ता

निशि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच॥
नीच कीच विच मगन जस, मीनहिं सलिल संकोच॥
केहि विधि होइ राम अभिषेकू। मोहिं अब फुरत उपाय न एकू॥
अवशि फिरहिं गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ। रामजननि हठ करब कि काऊ॥
मोहिं अनुचर कर केतिक बाता। तेहिमाँ कुसमय वाम विधाता॥

जो हठ करौं तो निपट कुकर्मू। हर-गिरि ते गुरु सेवक-धर्मू॥
एकौ युक्ति न मन ठहरानी। शोचत भरतहिं रैन सिरानी॥
प्रात अन्हाइ प्रभुहिं शिर नाई। बैठत पठये ऋषय बुलाई॥

वशिष्ठके विचार

गुरु-पद–कमल प्रणाम करि, बैठे आयसु पाइ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ॥

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
सत्यसिन्धु पालक श्रुतिसेतू। राम-जन्म-जग-मंगल–हेतू॥
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी। खल-दल दलन दीन हितकारी॥
नीति प्रीति प्रमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान यथारथ॥
करि विचार जिय देखहु नीके। राम रजाय शीश सबहीके॥
जेहि विधि अवध चलहिं रघुराई। कहहु समुझि सोइ करैं उपाई॥
सब सादर मुनिवर सुनि बानी। नय-परमारथ स्वारथ-सानी॥
सकुचौं तात कहत इक बाता। अरध तजहिं बुध सरवस जाता॥
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फिरिहहिं लषण सीय रघुराई॥
सुनि शुभ-वचन हर्ष दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरण गाता॥
मन प्रसन्न तनु तेज विराजा। जनु जिय राउ राम भे राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हे। फल जग जीवन अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जन्मभरि बासू। इहिते अधिक न मोर सुपासू॥
भरत-वचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयेउ विदेहू॥
भरत मुनिहिं मन भीतर पाये। सहित समाज राम पहँ आये॥

प्रभु प्रणाम करि दीन्ह सु-आसन। बैठे सब मुनि सुनि अनुसास
बोले मुनिवर वचन बिचारी। देश काल अवसर अनुहा
सुनहु राम सर्वज्ञ सुजाना। धर्म-नीति-गुण-ज्ञान-निधा

सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाव कुभाव।
पुरजन-जननी-भरत-हित, होइ सो करिय उपाव॥

आरति कहहिं विचारि न काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दा
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहिं हाथ उपा
सब कर हित रुख राउर राखे। आयसु किये मुदित फुर भा
प्रथम जो आयसु मोकहँ होई। माथे मानि करौं सिख सो
पुनि जेहि कहँ जस होब रजाई। सो सब भांति करिहि सेवका
कह मुनि राम सत्य तुम भाषा। भरत सनेह विचार न रा

भरत-विनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि॥
करब साधु-मत लोकमत, नृप-नय-निगम निचोरि॥

रामके विचार

बोले गुरु-आयसु अनुकूला। वचन मंजु मृदु मंगल-मू
नाथ-सपथ पितु-चरण दुहाई। भयेउ न भुवन भरत सम भा
राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत सम भा
भरत कहहिं सो किये भलाई। अस कहि राम रहे अर

तब मुनि बोले भरत सन, सब सकोच तजि तात॥
कृपासिन्धु प्रिय बन्धुसन, कहहु हृदयकी बात॥

सुनि मुनि-वचन राम-रुख पाई। गुरु साहेब अनुकूल अघा
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। यहिते अधिक कहौं मैं काह

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहिं भांति भलहि भल मोरा॥
गुरु गुसाइँ साहब सियरामू। लागत मोहि नीक परिणामू॥
कहि अनेक विधि कथा पुरानी। भरत प्रबोध कीन्ह मुनिज्ञानी॥
बोले सचिव वचन रघुनन्दू। दिनकर-कुल कैरव-वन चन्दू॥
तात जीय जनि करहु गलानी। ईश अधीन जीव-गति जानी॥
तीनकाल त्रिभुवन मत मोरे। पुण्यश्लोक तात कर तोरे॥
उर आनत तुमपर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई॥
दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई॥

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार॥
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥

कहौं सुभाव सत्य शिव साखी। भरत भूमि रह राउर राखी॥
तात कुतर्क करहु जिन जाये। वैर प्रेम नहिं दुरै दुराये॥
मुनिगण निकट विहंगम जाहीं। बाधक वधिक विलोकि पराहीं॥
हित अनहित पशु पक्षिउ जाना। मानुष-तनु गुणज्ञान-निधाना॥
तात तुमहिं मैं जानौं नीके। करौं कहा असमंजस जीके॥
राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेमप्रण लागी॥
तासु वचन मेटत मन सोचू। तेहिते अधिक तुम्हार सँकोचू॥
तापर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा। अवशि जो कहहु चहौं सो कीन्हा॥

मन प्रसन्न करि सकुचि तजि, कहहु करौं सो आज॥
सत्य-सिन्धु रघुवर-वचन, सुनि भा सुखी समाज॥

भरतके विचार

कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ॥
करि प्रणाम बोले भरत, जोरि जलज युग हाथ॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अम्बुनिधि अन्तर्यामी॥
गुरु प्रसन्न साहब अनुकूला। मिटी मलिन-मन कलपित शूला॥
अपडर डरउँ न शोच समूला। रविहिं न दोष देव दिश भूला॥
देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सन्मुख विमुख न काहुहि काऊ॥
लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ क्षोभ नहिं मन सन्देहू॥
अब करुणाकर कीजिय सोई। जन-हित प्रभुचित क्षोभ न होई॥
जो सेवक साहब संकोची। निज हित चहै तासु मति पोची॥
सेवक-हित साहब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ विहाई॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक-समाज साजि अब आना। करिय सफल प्रभु जो मनमाना॥

सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ॥
नातरु फेरिय बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिय सीय सहित रघुराई॥
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणासागर कीजिय सोई॥
देव दीन्ह सब मोपर भारू। मोरे नीति न धर्म विचारू॥
कहौं वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरतके चित चेतू॥
उतर देइ बिनु स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुण उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥
अब कृपालु मोहिं सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा॥
प्रभुपद शपथ कहौं सतिभाऊ। जग-मंगल-हित एक उपाऊ॥

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव॥
सो शिर धरि धरि करहिं सब, मिटिहि अनट अवरेव॥

त-बचन शुचि सुनि हिय हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
मंजस वश अवध-निवासी। प्रमुदित मन तापस बनवासी॥
रहिगे रघुनाथ सकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥

जनक दूतों का आगमन

क दूत तेहि अवसर आये। मुनि वशिष्ठ सुनि वेगि बुलाये।
रि प्रणाम तिन राम निहारे। वेष देखि भे निपट दुखारे॥
हि मुनिवर पूछी बाता। कहहु विदेह-भूप कुशलाता॥
नि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरवर जोरे हाथा॥
व राउर सादर सांई। कुशल हेतु सो भयउ गुसांई॥
नाहित कोशलनाथके, साथ कुशल गै नाथ॥
मिथिला अवध विशेषते, जग सब भयउ अनाथ॥
शलपति-गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग शोचवश बौरा॥
त राज्य रघुबर वनवासू। भा मिथिलेशहिं हृदय हरासू॥
बूझेउ बुध-सचिव समाजू। कहहु विचारि उचित का आजू॥
झि अवध असमंजस दोऊ। चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ॥
ति धीर धरि हृदय विचारी। पठये अवध चतुर चर चारी॥
फ भरत-गति भाउ कुभाऊ। आयहु वेगि न होइ लखाऊ॥
गये अवध चर भरतगति, बूझि देखि करतूति॥
चले चित्रकूटहिं भरत, चार चले तिरहूति॥
आइ भरतकी करणी। जनक समाज यथामति बरणी॥
गुरु पुरजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल मति॥
धीरज करि भरत बड़ाई। लिये सुभट साहनी बुलाई॥

घर-पुर-देश राखि रखवारे। हय-गज-रथ-बहु-यान सं
दुघड़ी साधि चले ततकाला। किय विश्राम न मगु महिपा
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले यमुन उतरन सब ल
खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ मा
साथ किरात छसातक दीन्हे। मुनिवर तुरत बिदा चर कं

सुनत जनक आगमन सब, हरषेउ अवध-समाज॥
रघुनन्दनहिं सकोच बड़, शोच-विवश सुरराज॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेयी। काहि कहै केहि दूषण
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयेउ बहोरि रहव दिन च
इहि प्रकार गत वासर सोऊ। प्रात अन्हान लगे सब
करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गणपति गौरि पुरारि त
रमा-रमण-पद वन्दि बहोरी। विनवहिं अंचल अंजलि
राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रज
स्ववस वसैं फिरि सहित समाजा। भरतहिं राम करैं युव
इहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जगजीवन

मिथिलेशका आगमन

प्रेम-मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेश॥
सहित सभा संभ्रम उठे, रविकुल-कमल-दिनेश ॥

आगे गमन कीन्ह रघुनाथा। भाइ सचिव गुरु पुरजन सा
गिरिवर दीख जनक नृप जवहीं। करि प्रणाम त्यागा रथ त
मन तहँ जहँ रघुवर-बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परस्पर

लगे जनक मुनिगुण-पद बन्दन। ऋषिन प्रणाम कीन्ह रघुनन्दन॥
भाइन सहित राम मिलि राजहिं। चले लेवाय समेत समाजहिं॥

आश्रम सागर शान्तरस, पूरन पावन पाथ॥
सैन मनहुं करुणा सहित, लिये जात रघुनाथ॥

बोरति ज्ञान विराग करारे। वचन सशोक मिलत नदि नारे॥
शोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा॥
विषम विषाद तुरावति धारा। भय भ्रम भँवरावर्त्त अपारा॥
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहि न खेइ एक नहिं आवा॥
बनचर कोल्ह किरात विचारे। थके विलोकि पथिक हियहारे॥
आश्रम उद्धि मिली जब जाई। मनहुं उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
शोक विकल दोउ राज-समाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा॥
भूप-रूप–गुण-शील सराही। शोचहिं शोक-सिन्धु अवगाही॥

किये अमित उपदेश, जहँ तहँ लोगन मुनिवरन॥
धीरज धरिय नरेश, कहेउ वशिष्ठ विदेहसन॥

जासु ज्ञान-रवि भवनिशि नाशा। बचन-किरण मुनि-कमल विकाशा॥
तेहि कि मोह महिमा नियराई। यह सियराम सनेह बड़ाई॥
विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू॥
सोह न राम प्रेम विनु ज्ञाना। कर्णधार विनु जिमि जलयाना॥
मुनि बहु विधि विदेह समुझाये। रामघाट सब लोग अन्हाये॥
सकल शोक संकुल नर-नारी। सो वासर वीतेउ विनु वारी॥
पशु खग मृगन न कीन्ह अहारा। प्रिय परिजन कर कवन विचारा॥

दोउ समाज निमिराज रघु, राज नहाने प्रात।
बैठे सब वट विटपतर, मन मलीन कृश गात॥
जे महिसुर दशरथ-पुर-वासी। जे मिथिलापति नगर-निवासी।
हंस-वंश-गुरु जनक-प्रबोधा। जिन्ह जग-मग-परमारथ शोधा।
लगे कहन उपदेश अनेका। सहित धर्म नय विरति विवेका।
कौशिक कहि कहि कथा पुरानी। समझाई सब सभा सुबानी।
तब रघुनाथ कौशिकहिं कहेऊ। नाथ कालि बिनु जल सब रहेऊ।
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई।
ऋषिरुख लखि कह तिरहुति-राजू। इहां उचित नहिं अशन अनाजू।
कहा भूप भल सबहिं सोहाना। पाय रजायसु चले नहाना।
तेहि अवसर फल मूल दल, फूल अनेक प्रकार।
लै आये वनचर विपुल, भरि भरि कांवरि भार॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई।
देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे।
दल फल फूल कन्द विधि नाना। पावन सुन्दर सुधा समाना।
सादर सब कहँ राम-गुरु, पठये भरि भरि भार॥
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु, लगे करन फलहार॥
इहि विधि वासर बीते चारी। राम निरखि नर-नारि सुखारी।
दुहुं समाज अस रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं।
सीता राम संग वन-वासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू।
परिहरि लषण राम वैदेही। जेहि घर भाव बाम विधि तेही।
सीय-मातु तिहि समय पठाई। दासी देखि सुअवसर आई।

सावकाश सुनि सब सिय सासू। आई जनक राज रनिवासू॥
कौशल्या सादर सन्मानी। आसन दीन्ह समय सम आनी॥
शील सनेह सरस दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिश कठोरा॥
पुलक शिथिल तनु बारि विलोचन। महि नख लिखन लगी सब शोचन॥
सब सिय राम प्रेमकी मूरति। जनु करुणा बहु रूप विसूरति॥
सीय मातु कह विधि बुधि बांकी। जो पय फेनु फोरि पवि टाँकी॥

सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल॥
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृत मराल॥

सुनि सशोच कह देवि सुमित्रा। विधिगति अति विपरीत विचित्रा।
जो सृजि पालै हरै बहोरी। बाल केलि सम विधि मति भोरी॥
कौशल्या कह दोष न काहू। कर्म विवश दुख सुख क्षति लाहू॥
कठिन कर्म-गति जान विधाता। सो शुभ अशुभ कर्म फल-दाता॥
ईश रजाइ शीश सबहीके। उतपति थिति लय विषय अमीके॥
देखि मोहवश शोचिय बादी। विधि प्रपंच अस अचल अनादी॥
भूपति जियब मरब उर आनी। शोचिय सखि लखि निजहित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुवानी। सुकृती अवधि अवध-पति रानी॥

लषण राम सिय जाहिं बन, भल परिणाम न पोच॥
गहवरि हिय कह कौशिला, मोहिं भरत-कर शोच॥

राम-शपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि सखी कहौं सति भाऊ॥
भरत-शील-गुण विनय-बड़ाई। भायप भक्ति भरोस भलाई॥
कहत शारदहुकै मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥
जानौं सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहिं कहेउ महीपा॥

कसे कनक मणि पारस पाये। पुरुष परखिये समय सुभाये॥
अनुचित आज्ञु कहब अस मोरा। शोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भई सनेह विकल सब रानी॥

कौशल्या कहि धीर धरि, सुनहु देवि मिथिलेशि॥
को विवेक-निधि वल्लभहिं, तुमहिं सकै उपदेशि॥
वेगि पाय धारिय थलहिं, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तो अब ईश-गति, कै मिथिलेश सहाय॥

लखि सनेह सुनि वचन विनीता। जनक-प्रिया गहि पांव पुनीता॥
देवि उचित अस विनय तुम्हारी। दशरथ-घरनि राम-महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अग्नि धूम गिरि शिर तृण धरहीं॥
सेवक राउ कर्म-मन-बानी। सदा सहाय महेश भवानी॥
रौरे अंगयोग जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
राम जाय वन करि सुर-काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहु-बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब याज्ञवल्क्य कहि राखा। देवि न होइ मृषा मुनि-भाषा॥

अस कहि पगु परि प्रेम अति, सिय-हित विनय सुनाइ।
सिय समेत सिय-मातु तब, चली सुआयसु पाइ॥

प्रिय परिजनहिं मिली वैदेही। जो जेहि योग भांति तस तेही॥
तापस-वेष जानकिहिं देखी। भे सब विकल विषाद विशेषी॥
जनक राम-गुरु-आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्ह लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावनि-प्रेम-प्रानकी॥
उर उमगेउ अम्बुधि अनुरागू। भयहु भूप मन मनहु प्रयागू॥

य-सनेह कंट बाढ़त जोहा। तापर राम-प्रेम शिशु सोहा॥
रंजीवि मुनि ज्ञान विकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलम्बनु॥
ह मगन मति नहिं विदेह की। महिमा सिय-रघुवर सनेह की॥

सिय पितु-मातु-सनेह-वश, विकल,न सकीं संभारि॥
धरणि-सुता धीरज धरेउ, समय सुधर्म विचारि॥

पस भेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेम परितोष विशेषी॥
त्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुयश धवल जग कह सब कोऊ॥
मि सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह विधि अण्ड करोरी॥
ग-अवनि थल तीनि वड़ेरे। इहि किय साधु-समाज घनेरे॥
पेतु कह सत्य सनेह सुवानी। सीय सकुचि मन मनहुं समानी॥
नि पितु मातु लीन्ह उर लाई। सिख आशिष-हित दीन्ह सुहाई॥
हति न सीय सकुच मन–माहीं। इहां बसब रजनी भल नाहीं।
खि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदय सराहत शील-सुभाऊ।

वार वार मिलि भेंटि सिय, विदा कीन्ह सनमानि।
कही समयसम भरत-गति, रानि सुअवसर जानि॥

नि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगन्ध सुधा शशि सारू।
दे सजल नयन पुलके तन। सुयश सराहन लगे मुदित मन॥
रत-कथा भव-बन्ध-विमोचनि । सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि॥
र्म राज-नय ब्रह्म-विचारू। इहां यथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहौं काह छलि छुअति न छांहीं॥
रत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥
रनि सप्रेम भरत सतभाऊ। तिय-जियकी रुचि लखि कह राऊ॥

बहुरहिं लखण भरत बन जाहीं। सबकर भल सबके मन
देवि परन्तु भरत रघुवरकी। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं

भोरेउ भरत न पेलिहहिं, मनमहँ राम-रजाय॥
कहिय न शोच सनेह-वश, कहेउ भूप बिलखाय॥

राम भरत-गुण कहत सप्रीती। निशि दम्पतिहिं पलक सम
राजसमाज प्रात युग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन

लोगोंके क्लेशसे रामको चिन्ता

गे नहाइ गुरु पहँ रघुराई। बन्दि चरण बोले रुख
नाथ भरत पुरजन महतारी। शोच विकल बनवास दुख
सहित समाज राउ मिथिलेशू। बहुत दिवस भे सहत
उचित होय सो कीजिय नाथा। हित सबही कर रौरे हाथ
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि शील-सुभा
करि प्रणाम तब राम सिधाये। ऋषि धरि धीर जनक पहँ
राम वचन गुरु नृपहिं सुनाये। शील सनेह स्वभाव सु
महाराज अब कीजिय सोई। सबकर धर्म सहित हित

ज्ञान-निधान सुजान शुचि, धर्म-धीर नरपाल॥
तुम बिनु असमंजस-शमन, को समर्थ इहिकाल॥

सुनि मुनि-वचन जनक अनुरागे। लखि गति ज्ञान विराग
शिथिल-सनेह गुनत मनमाहीं। आये इहाँ कीन्ह भल
रामहिं राव कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय-प्रेम प्रमा
हम अब बनते बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब विवेक

समय समुझि धरि धीरज राज़ा। चले भरत पहँ सहित समाजा ॥
भरत आय आगे होइ लीन्हा। अवसर सरिस सुआसन दीन्हा ॥
तात भरत कह तिरहुति-राऊ। तुमहिं विदित रघुवीर-सुभाऊ ॥

राम सत्यव्रत धमरत, सबकर शील सनेहु।
संकट सहत सकोच वश, करिय जो आयसु देहु ॥

सुनि तनु पुलकि नयन भरि वारी। बोले भरत धीर धरि भारी ॥
शिशु सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहिं सिख देइय स्वामी ॥
इहि समाज थल बूझब राउर। मन मलीन मैं बोलव बाऊर ॥
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता। क्षमब तात लखि वाम विधाता ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा-धर्म कठिन जग जाना ॥
स्वामि धर्म स्वारथहिं विरोधू। बधिर अन्ध प्रेमहि न प्रबोधू ॥
भरत-वचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरा। अर्थ अमित अति आखर थोरा ॥
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाय अस अद्भुत बानी ॥
भूप भरत मुनि साधु समाजू। गे जहँ विबुध-कुमुद-द्विजराजू ॥
सुनि सुधि शोच विकल सब लोगा। मनहुं मीन-गण नव जल-योगा ॥
गये जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रघुकुल-दीपा ॥
समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवंश-पुरोधा ॥
जनक भरत सम्बाद सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई ॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सब करैं मोर मत एहू ॥

रामका वशिष्ठको आत्मसमर्पण

सुनि रघुनाथ जोरि युग पाणी। बोले सत्य सरल मृदु बाणी ॥

विद्यमान आपुन मिथिलेसू। मोर कहा सब भांति भदेसू॥
राउर-राय रजायसु होई। राउर शपथ सही शिर सोई॥
राम-शपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत॥
सकल विलोकहिं भरत-मुख, बनै न उत्तर देत॥
सभा सकुच वश भरत निहारी। राम-बन्धु धरि धीरज भारी॥

भरतकी रामाज्ञा माननेकी प्रतिज्ञा

करि प्रणाम सब कहँ कर जोरी। राम राउ गुरु साधु निहोरी॥
क्षमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ वदन मृदु वचन कठोरा॥
प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हित अन्तरयामी॥
सरल सुसाहिब शील-निधानू। प्रणत-पाल सर्वज्ञ सुजानू॥
समरथ शरणागत-हितकारी। गुण-ग्राहक अवगुण-अघहारी॥
प्रभु पितु वचन मोहवश पेली। आयउँ इहां समाज सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमी अमरपद माहुर मीचू॥
राम-रजाइ मेटि मन-माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥
राउर रीति सुबानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, विरुदावलि बरजोर॥
शोकसनेह कि बाल सुभाये। आयसु लाइ रजायसु पाये॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहिं भांति भल मानेहु मोरा॥
राखा मोर दुलार गोसांई। अपने शील स्वभाव भलाई॥
नाथ निपट मैं कीन्ह ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥

ज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि विहाई ॥
ज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा ॥
कहि प्रेम-विवश भे भारी। पुलक शरीर विलोचन वारी ॥
पद गहे कमल अकुलाई। समय सनेह न सो कहि जाई ॥
-सिन्धु सनमानि सुवाणी। वैठाये समीप गहि पाणी ॥
त-विनय सुनि देखि सुभाऊ। शिथिल-सनेह सभा रघुराऊ ॥

भरतको रामका उत्तर

-धुरीण धीर नयनागर। सत्य-सनेह-शील-सुख-सागर ॥
काल लखि समय समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥
वचन वाणि सरवसते। हित परिणाम सुनत शशि रससे ॥
भरत तुम धर्म-धुरीणा। लोक-वेदविधि-परम-प्रवीणा ॥
हु तात तरणि-कुल-रीती। सत्यसिन्धु पितु-कीरति-प्रीती।
य समाज लाज गुरुजनकी। उदासीन हित अनहित मनकी ॥
तात-विनु बात हमारी। केवल कुल-गुरु-कृपा सुधारी ॥
प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत दुखारू ॥
विनु अवसर अथव दिनेशू। जग केहि कहौं न होइ कलेशू ॥
उत्पात तात विधि कीन्हा। मुनि मिथिलेश राखि सब लीन्हा ॥

राजकाज सब लाज-पति, धर्म धरणि-धन धाम ॥
गुरु-प्रभाव पालिहि सबहिं, भल होइहि परिणाम ॥

पिता गुरु स्वामि दिनेसू। सकल धर्म धरणी-धर सेसू ॥
तुम करहु करावहु मोहू। तात तरणि-कुल पालक होहू ॥
विचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥

बांटि विपति सबही मिलि भाई। तुमहिं अवधि भरि अति कठि
होहिं कुठांव कुवन्धु सुहाये। ओड़िय हाथ असिनके
सेवक कर-पद-नयन-से, मुखसों साहिव होइ॥
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ॥
सभा सकल सुनि रघुवर-वानी। प्रेम पयोधि अमिय जनु
भरतहिं भयेउ परम संतोषू। सन्मुख स्वामि विमुख दुख
मुख प्रसन्न मन मिटा विषादू। भा जनु गूंगहिं गिरा प्र
कीन्ह सप्रेम प्रणाम वहोरी। बोले पाणि पंकरुह
अव कृपालु जस आयसु होई। करौं शीश धरि सादर
सो अवलम्ब देव मोहिं देई। अवधि पार पावउँ जेहि
देव देव-अभिषेक-हित, गुरु अनुसासन पाइ॥
आनेउँ सव तीरथ-सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ॥
एक मनोरथ वड़ मनमाहीं। समय सकोच जात कहि
कहहु तात प्रभु-आयसु पाई। वोले वाणि सनेह
चित्रकूट मुनि-थल तीरथ वन। खग मृग सर सरि निर्झर गि
प्रभुपद अंकित अवनि विशेषी। आयसु होइ तो आवौं
अवसि अत्रि-आयसु शिर धरहू। तात विगत-भय कानन
मुनि-प्रसाद वन मंगलदाता। पावन परम सोहावन
ऋषि-नायक जहँ आयसु देहीं। राखेउ तीरथ-जल-थल
सुनि प्रभु-वचन भरत सुख पावा। मुनिपद कमल मुदित शिर
मुनि मिथिलेश सभा सव काहू। भरत-वचन सुनि भयउ
भरत-राम-गुण-ग्राम-सनेहू। पुलकि प्रशंसत राउ

नि सुनि राम भरत संबादू। दुहुं समाज हिय हर्ष विषादू॥
म-मातु दुख-सुख सम जानी। करि गुण दोष प्रबोधी रानी॥
करहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥
अत्रि कहेउ तब भरत सन, शैल समीप सुकूप॥
राखिय तीरथ-तोय तहँ, पावन अमल अनूप॥
त अत्रि अनुसासन पाई। जल-भाजन सब दिये चलाई॥
नुज आपु अत्रिमुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू॥
वन पाथ पुण्य-थल राषा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥
त अनादि सिद्ध थल येहू। लोपेउ काल विदित नहिं केहू॥
सेवकन्ह सरस थल देषा। कीन्ह सुजल हित कूप विशेषा॥
धिवश भयेउ विश्व उपकारू। सुगम अगम अति धर्म विचारू॥
त-कूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ-जल योगा॥
समेत निमज्जहिं प्राणी। होइहि विमल कर्म मन वाणी॥
कहत कूप महिमा सकल, गये जहां रघुराउ॥
अत्रि सुनायहु रघुवरहिं, तीरथ पुण्य प्रभाउ॥
त धर्म इतिहास सप्रीती। भयउ भोर निशि सो सुख बीती॥
य निवाहि भरत दोउ भाई। राम-अत्रि-गुरु-आयसु पाई॥
हित समाज साज सब सादे। चले राम-वन अटन पयादे॥
मल चरण चलत बिनु पनहीं। भे मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥
देखे थल तीरथ सकल, भरत पांच दिन मांझ॥
कहत सुनत हरिहर सुयश, गयउ दिवस भई सांझ॥
न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमि-सुर तिरहुति-राजू॥

भल दिन आजु जानि मनमाहीं। राम कृपालु कहत सकु...
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलो...
शील सराहि सभा सब सोची। कहुं न राम सम स्वामि सको...

भरतकी अन्तिम विनय

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बि...
करि दण्डवत कहत करजोरी। राखी नाथ सकल रुचि मो...
मोहिं लगि सहेउ सबहिं सन्तापू। बहुत भांति दुख पावा ...
अब गुसाइँ मोहिं देहु रजाई। सेवौं अवध अवधि लग...

जेहि उपाय पुनि पांय जन, देखैं दीन दयालु॥
सो शिष देइय अवधि लगि, कोशल-पाल कृपालु॥
दीनवन्धु सुनि बन्धुके, दीन वचन छलहीन॥
देश काल अवसर सरिस, बोले राम प्रवीन॥

रामका उत्तर और पादुका देना

तात तुम्हारि मोरि परिजनकी। चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर ब...
माथे पर गुरु मुनि मिथलेशू। हमहिं तुमहिं सपने न ...
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ-सुयश-धर्म-परमारथ...
पितु आयसु पालिय दोउ भाई। लोक वेद भल भूप ...
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालै। चलत सुगम पग परत न ...
अस विचारि सब शोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि ...
देश-कोष-पुरजन-परिवारू। गुरुपद-रजहिं लागि छर...
तुम पुनि मातु सचिव सुख मानी। पालहु पुहुमि प्रजा रज...

मुखिया मुखसों चाहिये, खान पानको एक ॥
पाले पोषै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥

राजधर्म सरवस इतनोई। जिमि मन माहिं मनोरथ गोई ॥
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भांती। बिनु अधार मन तोष न शांती ॥
भरत शील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह विवश रघुराजू ॥
प्रभुकरि कृपा पांवरी दीन्हीं। सादर भरत शीश धरि लीन्हीं ॥
चरण पीठ करुणा निधान के। जनु युग यामिक प्रजा प्रानके ॥
सम्पुट भरत सनेह-रतनके। आखर युव जनु जीव जतनके ॥
कुल कपाट कर कुशल कर्मके। विमल नयन सेवा सुधर्मके ॥
भरत मुदित अवलम्ब लहेते। अस सुख जस सिय राम रहेते ॥

भरतकी बिदाई

मांगेउ विदा प्रणाम करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमर-पति, कुटिल कुअवसर पाइ ॥

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेमरस कहि न परत सो ॥
तन मन वचन उमगि अनुरागा। धीर धुरंधर धीरज त्यागा ॥
वारिज-लोचन मोचति बारी। देखि दशा सुर-सभा दुखारी ॥
मुनि-गण गुरुजन धीर जनकसे। ज्ञान अनल मन कसे कनकसे ॥
जे विरंचि निर्लेपि उपाये। पद्म-पत्र जिमि जग जल पाये।
जहां जनक गुरुगति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ खोरी ॥
भेंटि भरत रघुवर समुझाये। पुनि रिपुदमन हर्षि उर लाये ॥
सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुण दुख दुहूँ समाजा। लगे चलनके साजन साजा ॥

प्रभुपद पद्म बन्दि दोउ भाई। चले शीश धरि राम रजाई
मुनि तापस वन देव निहोरी। सब सनमानि वहोरि वहोरी

लषणहिं भेंटि प्रणाम करि, शिरधरि सिय-पद-धूरि।
चले सप्रेम अशीष सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥

रामका जनक, मुनियों और माताओं को विदा करना

सानुज राम नृपहिं शिर नाई। कीन्हो बहु विधि विनय बड़ाई
देव दया-वश बड़ दुःख पायहु। सहित समाज काननहिं आयहु
पुर पगु धारिय देइ अशीशा। कीन्ह धीर धरि गमन महीशा
मुनि महिदेव साधु सन्माने। विदा किये हरि हर सम जाने
सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बन्दि पद आशिष पाई
कौशिक वामदेव जावाली। परिजन पुरजन सचिव सुचाली
यथा योग्य करि विनय प्रणामा। विदा किये सब सानुज रामा
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे

भरत-मातु-पद वंदि प्रभु, शुचि-सनेह मिलि भेंटि।
विदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच शोच सब मेटि॥

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्राणप्रिय प्रेम पुनीता
करि प्रणाम भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू
सुनि सिख अभिमत आशिष पाई। रही सीय दुहुं प्रीति समाई
रघुपति पटु पालकी मंगाई। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई
बार बार हिलि-मिलि दोउ भाई। सम सनेह जननी पहुंचाई

जनकदल और भरतदलका प्रस्थान

साजि वाजि गज वाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना

हृदय राम सिय लषण समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
सह बाजि गज पशु हिय हारे। चले जाहिं परवश मन मारे॥
गुरु गुरुतिय-पद वन्दि प्रभु, सीता लषण समेत॥
फिरे हर्ष विस्मय सहित, आये पर्ण-निकेत॥

रामका निषादको विदा करना

विदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ विरह विषादू॥
कोल्ह किरात भिल्ल वनचारी। फेरे फिरे जुहारि जुहारी॥
प्रभु सिय लषण बैठि बट छांहीं। प्रिय परिजन वियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह स्वभाव सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीत वचन मन करणी। श्रीमुख राम प्रेमवश बरणी॥
मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। राम विरह सब साज विहालू॥
प्रभु गुण ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुप चाप चले मगु जाहीं॥
यमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। राम सखा सब कीन्ह सुपासू॥
सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये॥

राज्यशासनकी व्यवस्था

जनक रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज संभारी॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू। तिरहुत चले साजि सब साजू॥
नगर-नारि-नर गुरु-सिख मानी। बसे सुखेन राम-रजधानी॥
राम दरश हित लोग सब, करत नेम उपवास॥
तजि तजि भूषण भोग सुख, जियत अवधिकी आस॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख से
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेव
भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रणाम वर विनय नि
ऊँच नीच कारज भल पोंचू। आयसु देव न करव सं
परिजन पुरजन प्रजा बुलाये। समाधान करि सुवश बसे
सानुज गे गुरु गेह बहोरी। करि दण्डवत कहत कर जो
आयसु होइ तो रहौं सनेमा। बोले मुनि सब पुलकि सप्रे
समुझब कहब करब तुम सोई। धर्मसार जग होइहि सो

मुनि सिख पाइ अशीश बड़ि, गणक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभु पादुका, बैठारी निरुपाधि॥

राम-मातु गुरु-पद शिर नाई। प्रभु-पद-पीठि-रजायसु
नंदिग्राम करि पर्ण कुटीरा। कीन्ह निवास धर्म-धुर-धी
जटा जूट शिर मुनि-पट-धारी। महि खनि कुश साथरी सँ
अशन वसन आसन व्रत नेमा। करत कठिन व्रत धर्म स
भूषण वसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तृण

राम-प्रेम—भाजन भरत, बड़ी न यह करतूति॥
चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति॥

देह दिनहिं दिन दूवरि होई। बढ़त तेज बल मुख-छवि
जिमि जल निघटत शरद प्रकाशे। बिलसत बेंत सुवनज विका
शम दम संयम नेम उपासा। नखत भरत हित विमल अका
ध्रुव विश्वास अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरवीथि विका
राम-प्रेम विधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित

रत रहनि समुझनि करतूती। भक्ति विरति गुण विमल विभूती॥
रणत सकल सुकवि सकुचाहीं। शेष गणेश गिरा मनमाहीं॥
नित पूजत प्रभु पांवरी, प्रीति न हृदय समाति॥
मांगि मांगि आयसु करत, राज काज बहु भांति॥
ल पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद-मंगल-करनू॥
रन कठिन कलिकाल कलेसू। महामोह-निसि-दलन-दिनेसू ॥
ापपुंज कुंजर-मृगराजू । समन-सकल-सन्ताप-समाजू ॥
न रंजन भंजन-भव भारू। राम-सनेह सुधा कर सारू॥
भरतचरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीयराम-पद-प्रेम, अवसि होइ भवरस-विरति॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त

अथ अरण्यकाण्ड

उमा राम-गुण गूढ़, पण्डित मुनि पावहिं विरति ॥
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्मरति ॥

एक वार चुनि कुसुम सुहाये। निजकर भूषण राम बनां
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिक सिलापर भाग

जयन्तका पाजीपन

सुरपति-सुत धरि वायस वेषा। सठ चाहत रघुपति बल दे
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महामन्द-मति पावन चाह
सीता-चरण चोंच हति भागा। मूढ़ मन्द-मति कारण का
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष शायक सन्धा

जिमि जिमि भाजत शक्रसुत, व्याकुल अति दुखदीन ॥
तिमि तिमि धावत रामशर, पाछे परम प्रवीन ॥

बचहिं उरग बरु ग्रसै खगेशा। रघुपति-शर छुटि बचब अँदे
नारद देखा विकल जयन्ता। लागि दया कोमल-चित सन्ता
दूरिहिते कहि प्रभु प्रभुताई। भजे जात बहु विधि समुझा
पठवा तुरत राम पहँ ताही। कहसि पुकारि प्रणत हित पाही
आतुर सभय गहेसि पदजाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुरा
सुनि कृपालु अति आरत वानी। एक नयन करि तजा भवानी

घुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित करत अति सुधा समाना॥
हुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहिं जाना॥
कल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई॥

अत्रिमुनिसे भेंट

त्रीके आश्रम प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हर्षित भयऊ॥
लकि गात अत्री उठि धाये। देखि राम आतुर चलि आये॥
रत दण्डवत मुनि उर लाये। प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये॥
खि राम-छवि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
रि पूजा कहि बचन सुनाये। दिये मूल-फल प्रभु-मन-भाये॥
नुसूयाके पद गहि सीता। मिली बहोरि सुशील विनीता॥
जो सिय सकल लोक-सुखदाता। अखिल लोक ब्रह्माण्ड कि माता॥
ो पाई सिय मुनिवर भामिनि। सुखी भई कुमुदिनि जिमि यामिनि॥
ऋषि-पत्नी मन सुख अधिकाई। अशिष देइ निकट बैठाई॥
दिव्य बसन भूषण पहिराये। जो नित नूतन अमल सुहाये॥
जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं। गरुड़ देखि जिमि पन्नग जाहीं॥

ऐसे बसन विचित्र सुठि, दिये सीय कहँ आनि॥
सन्मानी प्रिय वचन कहि, प्रीति न जाइ बखानि॥

नारिधर्मका निरूपण

कह ऋषिवधू सरल मृदु-बानी। नारि-धर्म कछु ब्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हितकारी। नित सुख-प्रद सुनु राज-कुमारी॥
अमित दान भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत्-काल परखिये चारी॥

वृद्ध रोगवस जड़ धन-हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव दुख यमपुर नाना।
एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति-पद-प्रेमा।
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुराण सन्त अस कहहीं।

उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाय॥
आगे सुनहिं ते भव तरहिं, सुनहु सीय चितलाय॥

उत्तमके अस बस मन-माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखहिं कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं।
बिनु अवसर भयते रह जोई। जानहु अधम नारि जग सोई।
पति-वंचक पर-पति-रति करई। रौरव नरक कल्प शत परई।
क्षण सुख लागि जन्म शत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।
बिनुश्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत-धर्म छाड़ि छल गहई।
पति-प्रतिकूल जन्म जहँ जाई। विधवा होइ पाय तरुणाई।

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं॥
तोहिं प्राण प्रिय राम, कहेहुं कथा संसार-हित॥

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरण सिर नावा।
तब मुनि सन कह कृपा-निधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना।
सन्तत मोपर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू।
धर्म-धुरंधर प्रभुकी वानी। सुनि सप्रेम बोले मुनिज्ञानी।
केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहेहु नाथ तुम अन्तर्यामी।
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनिधीरा। लोचन जल बह पुलक शरीरा।

तनु-पुलक निर्भर प्रेम पूरण नयन मुख-पंकज दिये।
मन ज्ञान गुण गोतीत प्रभु मैं दीख जपतप का किये॥
जपयोग धर्म समूहते नर-भक्ति अनुपम पावई।
रघुवीर-चरित पुनीति निशि दिन दास-तुलसी गावई॥
मुनिहुंकि अस्तुति कीन्ह प्रभु, दीन्ह सुभग वरदान।
सुमन वृष्टि नभ संकुल, जय जय कृपानिधान॥
मुनि-पद-कमल नाइ करशीशा। चले वनहिं सुर-नर-मुनि-ईशा॥
आगे राम अनुज पुनि पाछे। मुनिवर वेष बने अति आछे॥
उभय बीच सिय सोहहि कैसी। ब्रह्म-जीव बिच माया जैसी॥
सरिता वन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं वर बाटा॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया॥
वन अनेक सुन्दर गिरि नाना। लांघत चले जाहिं भगवाना॥

विराधका वध

मिला असुर विराध मगु जाता। गरजत घोर कठोर रिसाता॥
रूप भयंकर मानहु काला। वेगवन्त धायउ जिमि व्याला॥
गगनदेव मुनि किन्नर नाना। तेहि क्षण हृदय हारि भय माना॥
तुरतहिं सो सीतहिं लै गयऊ। राम-हृदय कछु विस्मय भयऊ।
समुझि हृदय कैकेई-करणी। कहा अनुज सन बहु विधि वरणी॥
बहुरि लषण रघुवरहिं प्रबोधा। पांच वाण छांड़े करि क्रोधा॥
भये क्रोध लषण संधानि धनु शर मारि तेहि व्याकुल कियो।
पुनि उठि निशाचर राखि सीतहिं शूल लै धावत भयो॥
जनु काल दण्ड कराल धावा विकल सब खग मृग भये।
धनु तानि श्री रघुवंशमणि पुनि काटि तेहि रज सम किये॥

बहुरि एक शर मारेउ, परा धरणि धुनि माथ॥
उठा प्रवल पुनि गर्जेउ, चला जहां रघुनाथ॥

ऐसे कहत निशाचर धावा। अब नहिं बचहु तुमहिं मैं खा
आव प्रवल यहि विधि जनु भूधर। होइहि काह कहहिं व्याकुल
तासु तेज शत मरुत समाना। टूटहिं तरु बहु उड़हिं प
जीव जन्तु जहँ लगि रहे जेते। व्याकुल भाजि चले सब
उरग समान जोरि शर साता। आवत ही रघुवीर निपा
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठा
तासु उरस्थ गाड़ेउ प्रभु धरणी। देव मुदित मन लखि प्रभु क
सीता आइ चरण लिपटानी। अनुज सहित तब चले भवा

शरभंग मुनिका श्रीरामप्रेम

प्रभु आये जहँ मुनि शरभंगा। सुन्दर अनुज जानकी सं
कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला। शंकर-मानस-राज-मराला
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छा
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हैं तनु त्या

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुण रूप श्रीराम॥

अस कहि योग अग्नि तनु जारा। राम कृपा वैकुण्ठ सिधा
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भक्ति वर ल
ऋषि निकाय मुनिवर गति देखी। सुखी भये निज हृदय विशे
अस्तुति करहिं सकल मुनिवृन्दा। जयति प्रणत-हित करुणा-क

श्रीरामका क्रोध और प्रतिज्ञा

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवर वृन्द पुलकि सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूँछा मुनिन्ह लागि अति दाया॥
जानतहहु का पूछहु स्वामी। समदर्शी उर अन्तरयामी॥
निशिचर-निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुनाथ नयन जल छाये॥

निशिचरहीन करौं महिं, भुज उठाय प्रण कीन्ह॥
सकल मुनिन्हके आश्रमन्ह, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

सुतीच्णका श्रीरामप्रेम

मुनि अगस्त्य कर शिष्य सुजाना। नाम सुतीक्षण रत-भगवाना॥
मन-क्रम-वचन राम-पद-सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक॥
प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥

पन्नगारि सुनु प्रेम सम, भजन न दूसर आन॥
यह विचारि पुनि पुनि मुनी, करत राम-गुण-गान॥

निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दशा भवानी॥
दिशि अरु विदिशि पंथ नहिं सूझा। को मैं कहां चलौं नहिं बूझा॥
कबहुंक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुंक नृत्य करै गुण गाई॥
अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई॥
अतिशय प्रीति देखि रघुवीरा। प्रगटे हृदय-हरण-भव-भीरा॥
मुनि मग माझ अचल होइ वैसा। पुलक शरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आये। देखि दशा निज जन-मन-भाये॥
मुनिहिं राम बहु भांति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥

मुनि अकुलाइ उठा तव कैसे। विकल होय फणि मणि बिनु जैसे॥
आगे देखि राम तनु श्यामा। सीता अनुज सहित सुखधामा॥
परेउ लकुट इव चरणन्ह लागी। प्रेम-मगन मुनिवर बड़ भागी॥
भुज विशाल गहि लिये उठाई। प्रेम प्रीति राखेउ उर लाई॥
मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला। कनक-तरुहिं जनु भेंट तमाला॥
राम वदन विलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुं चित्र मांझ लिखि काढ़ा॥

तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिं बार॥
निज आश्रम प्रभु आनि कर, पूजा विविध प्राकार॥

कह मुनि प्रभु सुनु विनती मोरी। अस्तुति करौं कवन विधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रवि सन्मुख खद्योत उँजोरी॥
श्याम ताम रस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं॥
मोह–विपिन-घन दहन कृशानुं। सन्त–सरोरुह-कानन भानुं॥
निशिचर करि वरूथ मृगराजं। त्रातु सदा नो भव-खग बाजं॥
यदपि विरज व्यापक अविनासी। सबके हृदय निरन्तर वासी॥
तदपि अनुज सिय सहित खरारी। बसहु मनसि मम कानन चारी॥
जे जानहिं ते जानहु स्वामी। सगुण अगुण उर अन्तर्यामी॥
जो कोशलपति राजिव-नयना। करौ सो राम हृदय मम अयना॥

मायावश जिमि जीव, रहहिं सदा सन्तत मगन।
तिमि लागहु मोहिं पीव, करुणाकर सुन्दर सुखद॥
अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बाण धर राम।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निःकाम॥

एवमस्तु कहि रमा निवासा। हर्षि चले कुम्भज ऋषि पासा॥
मुनि प्रणाम करि युग-करजोरी। सुनहु नाथ कछु विनती मोरी।
बहुत दिवस गुरु-दरशन पाये। भये मोहिं यहि आश्रम आये॥
अब प्रभु संग जाहुं गुरु पाहीं। तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
तुरत सुतीक्षण गुरु पहँ गयऊ। करि दण्डवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोशलाधीश-कुमारा। आये मिलन जगत-आधारा॥
राम अनुज समेत वैदेही। निशिदिन देव जपतहहु जेही॥
सुनत अगस्त्य तुरत उठि धाये। प्रभु विलोकि लोचन जल छाये॥
मुनि-पद-कमल परे दोउ भाई। ऋषि अति प्रीति लिये उर लाई॥
सादर कुशल पूछि मुनि ज्ञानी। आसन पर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहिं सम भाग्यवन्त नहिं दूजा॥
जहँ लगि रहे अपर मुनि-वृन्दा। हर्षे सब विलोकि सुखकन्दा॥

मुनि समूह महँ बैठि प्रभु, सन्मुख सबकी ओर॥
शरद इन्दु जनु चितवत, मानहु निकरचकोर॥

अगस्त्यसे श्रीरामका प्रश्न

तब रघुवीर कहा मुनि पाहीं। तुम सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम जानहु जेहि कारण आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ॥
अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि-द्रोही॥
द्विजद्रोही न बचहिं मुनिराई। जिमि पंकज वन हिमऋतु पाई॥
मुनि मुसकाने सुनि प्रभुवानी। पूछहु नाथ मोहिं का जानी॥
तुम्हरे भजन-प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमर तरु विशाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया॥

जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भक्षक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सो काला॥
ते तुम सकल लोकपति साईं। पूछेहु मोहि मनुजकी नाईं॥
यह वर मागौं कृपानिकेता। बसहु हृदय सिय अनुज समेता॥
अविरल भक्ति विरत सत्संगा। चरण सरोरुह प्रीति अभंगा॥
यद्यपि ब्रह्म अखन्ड अनन्ता। अनुभव-गम्य भजहिं जेहिं सन्ता॥
अस तव रूप बखानौं जानौं। फिरि फिरि सगुण ब्रह्मरति मानौं॥

जाहि जीव पर तव कृपा, संतत रहत हुलास॥
तिनकी महिमा को कहै, जो अनन्य प्रियदास॥

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ॥
गोदावरी नदी तहं बहई। चारिउ युग प्रसिद्ध सो अहई॥
दंडक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र शाप मुनिवर कर हरहू॥
बास करहु तहं रघुवर-राया। कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया॥

पंचवटीमें श्रीराम

चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचवटी नियराई॥
दिव्य लताद्रुम प्रभु मन भाये। निरखि राम ते भये सुहाये॥
लषण-राम-सिय-चरण निहारी। कानन अघ गा भा सुखकारी॥

गृद्धराज सों भेंट भइ, बहु विधि प्रीति दृढ़ाइ॥
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पण-गृह छाइ॥

जबते राम कीन्ह तहँ वासा। सुखी भये मुनि बीते त्रासा॥
गिरि-वन-नदी ताल छवि छाये। दिन प्रति दिन अति होत सुहाये॥
खग मृग वृन्द अनन्दित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छवि लहहीं॥

सो वन बरणि न सक अहिराजा। जहां प्रकट रघुवीर बिराजा॥
एक बार प्रभु सुख आसीना। लक्ष्मण वचन कहे छलहीना॥
सुर-नर-मुनि सचराचर सांई। मैं पूछौं निज प्रभुकी नाईं॥
मोहिं समुझाइ कहो सोइ देवा। सब तजि करौं चरण-रज-सेवा
कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भक्ति करहु जेहि दाया॥

ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ॥
जाते होइ चरण-रति, शोक मोह भ्रम जाइ॥

थोरे महँ सब कहौं बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥

श्रीरामका भक्तिज्ञान वैराग्य निरूपण

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वश कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।
एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचै जग गुण वश जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥
ज्ञान-मान जहं एकौ नाहीं। देखत ब्रह्म रूप सब मांहीं॥
कहिय तात सो परम विरागी। तृण सम सिद्धि तीनि गुण त्यागी॥

माया ईश न आपु कहँ, जानि कहै सो जीव॥
बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥

धर्मते विरति योगतें ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना॥
जाते वेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदाई॥
सो स्वतन्त्र अवलम्ब न आना। जेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥
भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिलहिं जो सन्त होहिं अनुकूला॥

भक्तिके साधन कहौं बखानी। सुगम पन्थ मोहिं पावहिं प्रा
प्रथमहिं विप्रचरण-अतिप्रीती। निज हित धर्म-निरत श्रुतिनी
इहि कर फूल मन विषय विरागा। तब मम चरण उपज अनुरा
श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला-रति अति मनमाह
सन्तचरण-पंकज अतिप्रेमा। मन-क्रम-वचन भजन दृढ़ ने
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहिं कहँ जानै दृढ़ से
मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद गिरा नयन बह नी
कामादिक मद दंभ न जाके। तात निरंतर बश मैं ता

वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करै निष्काम॥
तिनके हृदय कमल महँ, करौं सदा विश्राम॥

भक्तियोग सुनि अति सुख पावा। लक्ष्मण प्रभु चरणन्ह शिरना
नाथ सुने गत मम सन्देहा। भयउ ज्ञान उपजेउ नव ने
अनुज वचन सुनि प्रभु मनभाये। हर्षि राम निज हृदय लगा
इहि विधि गये कछुक दिन बीती। कहत विराग-ज्ञान-गुण

सूपनखाके नाककान काटना

सूपनखा रावणकी बहिनी। दुष्ट हृदय दारुण जिमि अहि
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ युगल कुमा
रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई। बोली वचन मधुर मुसु
तुमसन पुरुष न मोसम नारी। यह संयोग बिधि रचा विचा
मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुं मा
ताते अबलगि रहिउँ कुमारी। मन माना कछु तुमहिं निहा
सीतहिं चितै कही प्रभु बाता। अहै कुमार मोर लघु भ्रा
गइ लक्ष्मण रिपु-भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बा

सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समरथ कोशलपुर राजा। जो कछु करैं उन्हैं सब छाजा ॥
केहरि सम नहिं करिवर, लवा कि बाज समान ॥
प्रभु सेवक इमि जानहु, मानहु वचन प्रमान ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन शुभगति व्यभिचारी ॥
लोभी जस चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत जे प्रानी ॥
पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई ॥
लक्ष्मण कहा तोहिं सो बरई। जो तृण तोरि लाज परिहरई ॥
तब खिसिआनि राम पहँ गई। रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
विथुरे केश रदन विकराला। भृकुटी कुटिल करन लगि गाला ॥
सीतहिं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सैन बुझाई ॥
अनुज राम मनकी गति जानी। उठे रिसाइ सो सुनौ भवानी ॥
लक्ष्मण अति लाघव तिहिं, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावण कहँ, मनहुं चुनौती दीन्ह ॥
नाक कान बिनु भइ विकरारा। जनु स्रव शैल गेरुके धारा ॥
खरदूषण पहँ गइ बिलखाता। धृक धृक तव पौरुष बल भ्राता ॥
तेहिं पूंछा सब कहेसि बुझाई। यातुधान सुनि सैन बुलाई ॥

खरदूषणवध

चौदह सहस सुभट संग लीन्हे। जिन सपनेहु रण पीठ न दीन्हे ॥
धाये निशिचरनिकर बरूथा। जनु सपक्ष कज्जल गिरि यूथा ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटक भट अति हरषाहीं ॥
कोउ कह जियत धरहु दोउ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई ॥
कोउ कह सुनौ सत्य हम कहहीं। कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं ॥

यहि विधि कहत वचन रणधीरा। आये सकल जहां रघुवी
धूरि पूरि नभ मण्डल रहेऊ। राम बुलाइ अनुंज सन कहे
लै जानकिहिं जाहु गिरि कंदर। आवा निशिचर कटक भयंक
रहेउ सजग सुनि प्रभुकै बानी। चले सहित सिय शर धनु पा
देखि राम रिपु दल चलि आवा। विहँसि कठिन कोदण्ड चढ़ा
घेरि रहे निशिचर समुदाई। दण्डक खग मृग चले परा
प्रभु विलोकि शर सकहिं न डारी। थकित भये रजनीचर भा
यद्यपि भगनी कीन्ह कुरूपा। वध लायक नहिं पुरुष अनू
देहिं तुरत निज नारि पठाई। जीवत भवन जाहिं दोउ भा
दूतन कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसका
हम क्षत्री मृगया वन करहीं। तुमसे खल मृग खोजत फि
रिपु वलवन्त देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन ल
यद्यपि मनुज दनुज-कुल-घालक। मुनिपालक खल-शालक बाल
जो न होइ वल घर फिरि जाहू। समर विमुख मैं हतौं न का
दूतन जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खरदूषण उर अति दहे

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु विकट भट रजनीचरा।
शर चाप तोमर शक्ति शूल कृपाण परिघ परशु धरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयो महा।
भये वधिर व्याकुल यातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा॥

सावधान होइ धाये, जानि सकल आराति।
लागे वर्षन रामपर, अस्त्र शस्त्र बहु भांति॥
तिन्हके आयुध तृण सम, करि काटे रघुवीर।
तानि शरासन श्रवण लगि, पुनि छाड़े निज तीर॥

व रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके दुख बीते॥
अब लक्ष्मण सीतहिं लै आये। प्रभु-पद परत हर्षि उर लाये॥
आं देखि खर दूषण केरा। सूपनखा तब रावण प्रेरा॥

सूपनखाका क्रोध और उपदेश

ली बचन क्रोध करि भारी। देस कोसकी सुरति बिसारी॥
रसि पान सोवसि दिन राती। सुधि न तोहिं शिरपर आराती॥
ज-नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा॥
द्या बिनु विवेक उपजाये। श्रम फल पढ़े किये अरु पाये॥
गते यती कुमंत्रते राजा। मानते ज्ञान पानते लाजा॥
ति प्रणय बिनु मदते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।
अस कहि विविध विलाप, पुनि लागी रोदन करन।
सभा मांझ व्याकुल परी, बहु प्रकार कहि रोइ॥
तोहि जियत दशकन्धर, मोरि कि असगति होइ॥

नत सभासद उठ अकुलाई। समुझाई गहि बांह उठाई॥
ह लंकेश कहसि किन बाता। केइं तव नासा कान निपाता॥
वध नृपति दशरथके जाये। पुरुषसिंह वन खेलन आये॥
भाधाम राम अस नामा। तिन्हके संग इक नारि ललामा॥
वनमुक्त लोक वसं ताके। दशमुख सुनु सुन्दरि अस जाके॥
सु अनुज काटी श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करिहिं परिहासा॥
दूषण सुनि लाग गुहारा। छिन महँ सकल कटक उन मारा॥
रदूषण त्रिशिरा कर घाता। सुनि दशशीश जरे सब गाता॥

भयो शोचवश नहिं विश्रामा। बीतहिं पल मानहुं शत

सूपनखहिं समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भांति।
भवन गयउ अति शोचवश, नींद परी नहिं राति॥

चला अकेल यान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिन्धु तट
रथ अनूप जोरे खर चारी। वेगवन्त इमि जिमि
इहां राम अस युक्ति बनाई। सुनहु उमा सो कथा

लछिमन गये बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
जनकसुता सन बोलेउ, विहंसि कृपासुखकन्द॥

सुनहु प्रिया व्रतरुचिर सुसीला। मैं कछु करब ललित नर
तुम पावक महँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर
जबहिं राम सब कहेउ बखानी। प्रभुपद धरि हिय अनल
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील-सुरूप
लछिमनहूं यह मर्म न जाना। जो कछु चरित रचा भग
दशमुख गयउ जहां मारीचा। नाइ माथ स्वारथरत
नवनि नीचकी अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग
भयदायक खलकी प्रियबानी। जिमि अकालके कुसुम

करि पूजा मारीच तब, सादर पूंछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयउ तात॥

दशमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान
होहु कपट मृग तुम छल कारी। जेहि विधि हरि आनौं नृप
तेइँ पुनि कहा सुनहुं दशशीशा। ते नर रूप चराचर
तासें तात वैर नहिं कीजै। मारे मरिय जिआये

मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर शर रघुपति मोहिं मारा॥
योजन आयउँ छिन माहीं। तिन्ह सन वैर किये भल नाहीं॥
जेइ ताड़का सुवाहु हति, खण्डेउ हरकोदण्ड॥
खरदूषण त्रिशरा बधेउ, मनुज कि अस बरिवंड॥
हु भवन कुल कुशल विचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी॥
जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहिं समान को योधा॥

नौका विरोध न करना चाहिये

मारीच हृदय अनुमाना। नवहिं विरोधे नहिं कल्याना।
स्त्रो गर्मी प्रभु शठ धनी। वैद्य वन्दि कवि मानस गुनी॥
य भांति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना॥
र देत मोहिं बधिहि अभागे। कस न मरौं रघुपतिशर लागे॥
ता लषण सहित रघुराई। जेहि बन बसहिं मुनिन्ह सुखदाई॥
ह बन निकट दशानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ॥
त विचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मणि रचित बनाई॥
ता परम रुचिर मृग देषा। अंग अंग सुमनोहर वेषा॥
नहु देव रघुवीर कृपाला। इहि मृगकर अति सुन्दर छाला॥
य-सिन्धु प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही॥
रघुपति जाना सब कारन। उठे हर्षि सुरकाज संवारन॥
विलोकि कटि परिकर बांधा। करतल चाप रुचिर शर सांधा॥
लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत विपिन निशिचर समुदाई॥
ता केरि करेहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय विचारी॥
हि विलोकि चला मृग भाजी। धाये राम शरासन साजी॥

कबहुं निकट पुनि दूरि पराई। कबहुंक प्रकटै कबहुं
प्रकटत दुर करत छल भूरी। इहि बिधि प्रभुहिं गयो
तब तकि राम कठिन शर मारा। धरणि परेउ करि घोर
मृग बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम
जाहु बेगि संकट तव भ्राता। लक्ष्मण बिहँसि कहेउ सुनु
सौंपि गये मोंहि रघुपति थाती। जो तजि जाउँ तोष नहिं
मर्म बचन सीता जब बोली। हरि प्रेरित लछिमन मति
चहुंदिशि रेखा खींच अहीशा। बार बार नायउ पद
वन दिशि देव सौंपि सब काहू। चले जहां रावण
शून्य भवन दशकंधर देषा। आवा निकट यतीके
जिमि कुपन्थ पग देत खगेशा। रह न तेज बल बुधि
करि अनेक विधि छल चतुराई। मांगेउ भीख दशानन
अतिथि जानि सिय कंद मूल फल। देन लगी तेइ कीन्ह बहु
कह दशमुख सुन सुन्दरि बानी। बाँधी भीख न लेउँ

सीताहरण

विधि गति बाम काल कठिनाई। रेख नांघि सिय बाहेर
नाना विधि कहि कथा सुनाई। राज-नीति भय-प्रीति
कह सीता सुनु यती गुसाईं। बोलसि वचन दुष्टकी
तव रावण निज रूप दिखावा। भइ सभीत जब नाम
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ गये प्रभु खल रहु
जिमि हरि बधुहिं क्षुद्र शश चाहा। भयसि कालवश निशिचर

स कर चह खगपति समता। सिन्धु समान होइ किमि सरिता॥
कि होइ सुरधेनु समाना। जाहु भवन निज सुनु अज्ञाना॥
क्रोधवन्त तब रावण, कीन्हेसि, रथ बैठाय॥
चलेउ गगन पथ आतुर, भय रथ हांकि न जाय॥
जगदीश देव रघुराया। केहि अपराध विसारेहु दाया॥
तहरण शरण सुखदायक। हा रघुकुलसरोज दिननायक॥
लछिमन तुम्हार नहिं दोषा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोषा॥
ति मोरि को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
ता कर विलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी॥

रावण-जटायु-युद्ध

राज सुनि आरतबानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
म निशाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छवस कपिला गाई॥
इ प्रथम बल ममतनु नाहीं। तदपि जाइ देखौं बलताहीं॥
ा पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौं यातुधानकर नासा॥
ा क्रोधवन्त खग कैसे। छूटै पवि पर्वत पहँ जैसे॥
दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेसि मोही॥
ा जरठ जटायू येहा। मम कर तीरथ छांड़िहि देहा॥
त गृध्र क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा॥
जानकिहिं कुशल घर जाहू। नाहिंत सत्य सुनहु बहुबाहू॥
रोष-पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥
न देत दशानन योधा। तबहिं गृद्ध धावा करि क्रोधा॥
रि कच बिरथ कीन्ह महिगिरा। सीतहिं राखि गृध्र पुनि फिरा

दशमुख उठि कृत शर संधाना। गृध्र आइ काटेउ धनु
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दण्ड एक भइ मूर्छा
कीन्हेसि बहु जब युद्ध खगेशा। थकित भयेउ तब जरठ गृ
तब सक्रोध निशिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल
काटेसि पंख परा खग धरणी। सुमिरि रामकी अद्भुत

अशोकबाटिकामें सीताजी

सीतहिं यान चढ़ाय बहोरी। चला उताउल त्रास न
करति विलाप जात नभ सीता। व्याध विवश जनु मृगी

हारि परा खल बहुबिधि, भय अरु प्रीति दिखाइ।
तब अशोक पादप तरे, राखेसि यतन कराइ।

रामको सीताहरणकी आशंका

रघुपति अनुजहिं आवत देखी। मन बहु चिन्ता कीन्ह
निशिचर निकर फिरहिं बनमाहीं। मममन सीता आश्रम
अहह तात भल कीन्हेउ नाहीं। सिय विहीन मम जीवन
इहिते कवन बिपति बड़ भाई। खोयहु सीय काननहिं
गहि पद कमल अनुज करजोरी। कहेउ नाथ कछु मोरि
अनुज समेत गयउ प्रभु तहँवां। गोदावरि तट आश्रम

सीताके लिये रामका विलाप

आश्रम देखि जानकी हीना। भये बिकल जस प्राकृत
लछिमन समुझाये बहु भांती। पूँछत चले लता त
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता
इहिं विधि बिलपत खोजत स्वामी। मनो महाबिरही

फणि मणिहीन दीन जिमि, मीनहीन जिमि वारि ॥
तिमि व्याकुल भये लखन तहँ, रघुवर दशा निहारि ॥

उरधीर बुझावहिं रामहिं। तजहिं न शोक अधिक सुखधामहिं
वर अमित नदी गिरि खोहा। बहु विधि राम लषन तहँ जोहा ॥
हृदय कुछ कहि नहिं आवा। टूट धनुष शर आगे पावा ॥
हुं-कहुं शोणित देखिय कैसे। श्रावण जल भा डावर जैसे ॥
त राम लछिनमहिं बुझाई। काहू कीन्ह युद्ध इहि ठांई ॥

राम-जटायु संवाद

परा गृध्रपति देखा। सुमिरत रामचरणकी रेखा ॥

कर-सरोज शिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुवीर ॥
निरखि रामछवि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥

कह गृद्ध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजनभव-भीरा ॥
थ दशानन यह गति कीन्ही। तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही
दक्षिण दिशि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररीकी नाईं ॥
श लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना ॥
भरि नयन कहा रघुराई। तात कर्म निजते गतिपाई ॥
रहित वश जिनके मनमाहीं। तिन्हकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तजि जाहु तात मम धामा। देउँ कहा तुम पूरनकामा ॥
देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा ॥
मगात विशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

जय रामरूप अनूप निर्गुन सगुनगुनप्रेरक सही।
दससीस-बाहु-प्रचण्ड-खंडन चाप सर मंडन मही ॥

पाथोद्गात सरोजमुख राजीव-आयतलोचनं।
नित नौमिराम कृपाल बाहु विसाल भवभय-मोचनं ॥१॥
बलमप्रमेयमनादिमज अव्यक्त मेकमगोचरं।
गोविन्द-गोपर-द्वन्द्वहर विज्ञानघन धरनीधरं॥
जय राम मंत्र जपन्त सन्त अनन्त जनमनरंजनं।
नित नौमि राम अकामप्रिय कामादि खलदल गंजनं ॥२॥
जेहि श्रुति निरन्तर-ब्रह्मव्यापक विरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ज्ञान विराग-योग अनेक मुनि जेहिं पावहीं॥
सो प्रगट करुणाकन्द सोभावृन्द अगजग मोहई।
मम हृदयपंकज-भृङ्ग अंग अनंग बहुछवि सोहई॥३॥
जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम निर्मल सदा।
पश्यन्ति यं योगी यतन करि कर्ममन गोवश यदा॥
सो राम रमानिवास सन्तत दासवश त्रिभुवन-धनी।
मम उर वसहु सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥४॥

अविरल भक्ति मांगि वर, गृध्र गयउ हरिधाम॥
तेहिको क्रिया यथोचित, निजकर कीन्हीं राम॥

शवरीके आश्रममें श्रीराम

ताहि देइ गति राम उदारा। शवरीके आश्रम पगु धा
प्रेममगन मुख वचन न आवा। पुनि पुनि पदसरोज सिर ना
सादर जल लै चरण पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठा

कन्द मूल फल सरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खायउ, बारहिं बार बखानि॥

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहिं विलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि विधि अस्तुति करहुं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भक्ति कर नाता॥
जाति पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुण चतुराई॥
भक्ति-हीन नर सोहै कैसे। बिनु जल बारिद देखिय जैसे॥

रामका नवधा भक्ति-कथन

नवधा भक्ति कहौं तोहिं पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भक्तिं सन्तन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु-पद-पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान॥
चौथि भक्ति मम गुण गण, केर कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा॥
षट दम शील विरत बहु कर्मा। निरत निरन्तर सज्जन धर्मा॥
सतईं सब मोहिं मय जग देखै। मोते सन्त अधिक करि लेखै॥
अठईं यथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखै परदोषा॥
नवम सरल सबसों छल हीना। मम भरोस हिय हर्ष न दीना॥
नव महँ एकौ जिन्हके होईं। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे॥
सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरणहिं अनुरागा।
तव महिमा जिहि उर बसहि तासु परम बड़ भाग॥
सुनि शुभ वचन हर्ष कहँ पाई। पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाइ॥
जनकसुता कै सुधि मोहिं भामिनि। जानहु तो कहु करिवर गामिनि॥

पम्पा सरहिं जाहु रघुराई। मुनिवर विपुल रहैं जहँ छाई॥
ऋषि मतंग महिमा गुण भारी। जीव चराचर रहत सुखारी॥
वैर न कर काहू सन कोई। जासन वैर प्रीति करु सोई॥
शिखर सुहावन कानन फूले। खग मृग जीव जन्तु अनुकूले॥
करहु सफल श्रम सब कर जाई। तहां होइ सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुवीरा। जानतहू पूँछत मतिधीरा॥
बार बार प्रभु पद शिर नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥
चलेउ राम त्यागा वन सोऊ। अतुलित बल नरकेहरि दोऊ॥

श्रीरामका विरह विलाप

विरही इव प्रभु करत विषादा। कहत कथा अनेक सम्वादा॥
लछिमन देखहु कानन शोभा। देखत किहिकर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग वृन्दा। मानहुं मोरि करत हहिं निन्दा॥

वसन्त वर्णन

देखहु तात वसन्त सोहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा॥
विरह विकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल॥
सहित विपिन मधुकर खगन्ह, मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गयेउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात॥
डेरा कीन्हेउ मनहुं तब, कटक हटकि मर्न जात॥
विटप विशाल लता अरुझानी। विविध वितान दिये जनु तानी॥
कदलि ताल वर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
विविध भांति फूले तरु नाना। जनु बानैत बनै बहु बाना

कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाये। जनु भट विलग विलग होइ छाये॥
कूजत पिक मानहु गज माते। ढेक महोख ऊँट विसराते॥
मोर चकोर कीर वर वाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतर लावा पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोजवरूथा॥
रथ गिरिशिला दुन्दभी झरना। चातक वन्दी गुणगण बरना॥
मधुकर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयारि बसीठी आई॥
चतुरंगिनी सेन सब लीन्हे। विचरत सबहिं चुनौती दीन्हें॥
लछिमन देखहु काम अनीका। रहहिं धीर तिन्हकै जगलीका॥
यहिके एक परम बल नारी। तेहिते उबर सुभट सोइ भारी॥

तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ॥
मुनि विज्ञान-धाम मन, करहिं निमिष महँ क्षोभ॥
लोभके इच्छा दम्भ बल, कामके केवल नारि॥
क्रोधके परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचार॥

गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अन्तरयामी॥
कामिनि कै दीनता दिखाई। धीरनके मन विरति दृढ़ाई॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल रामकी दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जापर होइ सो नर अनुकूला॥
उमा कहहुं मैं अनुभव अपना। हरिका भजन सत्य जग सपना॥

पम्पासरमें श्रीराम

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पम्पा नाम सुभग गम्भीरा॥
सन्त हृदय जस निर्मल बारी। बांधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जिमि उदार गृह याचक भीरा॥

पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइय मम।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं॥
यथा धर्म शीलान्हके, दिन सुख संयुत जाहिं॥
फूले फले विटप सब, रहे भूमि नियराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाइ॥

विरहवन्त भगवंतहिं देषी। नारद मुनि भा सोच विशेषी॥
यह विचारि नारद करवीना। गये जहां प्रभु सुख आसीना॥
अति प्रसन्न रघुनाथहिं जानी। पुनि नारद बोले मृदुवानी॥

नारदका प्रश्न और रामका उत्तर

राम जवहिं प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहिं सुनहु रघुराया॥
तव विवाह चाहौं मैं कीन्हा। प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहिं कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन्हकी रखवारी। जिमि बालकहिं राखु महतारी॥
गह शिशु वच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भये तेहि सुतपर माता। प्रीति करै नहिं पाछिल बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जिनहिं मोर बल निजबल ताही। दुहुं कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह विचारि पंडित मोहि भजहीं। पायहु ज्ञान भक्ति नहिं तजहीं॥

काम क्रोध और लोभकी प्रबलता

काम क्रोध लोभादिमद, प्रबल मोहकी धार।
जिन्ह महँ अति दारुण दुखद, माया रूपी नार॥

सुनि मुनि कह पुराण श्रुतिसंता। मोह विपिन कहँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाशय भारी। होइ ग्रीषम शोषै सब नारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हर्षप्रद वर्षा एका॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ शरद सदा सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा। होइ हिम तिन्हहिं देय दुख मन्दा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहै नारि शिशिर ऋतु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना। वनसीसम तिय कहहिं प्रवीना॥

अवगुण मूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुखखानि।
ताते कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि॥

सुनि रघुपतिके वचन सुहाये। मुनि तनु पुलकि नयन भरि आये॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम विज्ञान विशारद॥

सन्तों के लक्षण

सन्तन्हके लक्षण रघुवीरा। कहहु राम भंजन भव भीरा॥
सुन मुनि सन्तनके गुण कहऊं। जेहिते मैं उनके वश रहऊं॥
षट विकार तजि अनघ अकामा। सकल अकिंचन शुचि सुखधामा॥
अमित बोध परमारथ भोगी। सत्य सार कवि कोविद योगी।
सावधान मद मान बिहीना। धीर भक्त गति परम प्रवीना।

गुणागार संसार दुख, रहित विगत सन्देह।
तजि मम चरण सरोज प्रियं, तिन्हकहँ देह न गेह॥

निज गुण सुनत श्रवण सकुचाहीं। परगुण सुनत अधिक हर्षाहीं॥

सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल स्वभाव सबहिं सन प्रीती॥
जप तप व्रत दम संयम नेमा। गुरु गोविन्द विप्र-पद प्रेमा॥
श्रद्धा क्षमा मइत्री दाया। मुदिता मम-पद-प्रीति अमाया॥
विरति विवेक विनय विज्ञाना। बोध यथारथ वेद पुराना॥
दम्भ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रतशीला॥
सुनु मुनि साधुन्हके गुण जेते। कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते॥

*** अरण्यकाण्ड समाप्त ***
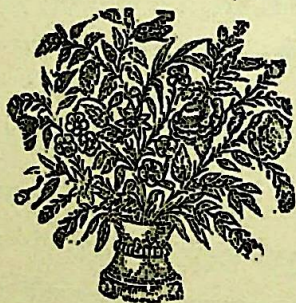
अथ किष्किन्धा काण्ड

:*:*

मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञानखानि अघहानिकर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न॥
जरत सकल सुर-वृन्द, विषम गरल जेहि पानकिय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपालु शंकर सरिस॥

आगे चले बहुरि रघुराई। ऋष्यमूक पर्वत नियराई॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल-बल-सीवा॥
अति समीप कह सुनु हनुमाना। पुरुष युगल बल-रूप-निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसि मोहिं निज सैन बुझाई॥
पठवा वालि होइ मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह शैला॥

श्रीरामसे हनुमानकी जानपहचान

विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाय पूछत अस भयऊ॥
को तुम श्यामल गौर शरीरा। क्षत्री रूप फिरहु वन बीरा।
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु वन बिचरहु स्वामी॥
सुनि बोले रघुवंश कुमारा। विधि कर लिखा को मेटन हारा॥
कोशलेश दशरथके जाये। हम पितुवचन मानि वन आये॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहां हरी निशिचर वैदेही। खोजत फिरहि विप्र हम तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई॥
प्रभु पहिचानि परे गहि चरणा। सो सुख उमा जाहि नहिं वरणा॥

पुलकित तनु मुख आव न वचना। देखत रुचिर बेषको रचना।
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्हा। हर्षि हृदय निज नाथहिं चीन्हा।

श्रीराम सुग्रीवकी मित्रता

नाथ शैलपर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।
तासन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे।
सो सीता कर खोज कराई। जहँ तहँ मर्कट कोटि पठाई।
इहि विधि सकल कथा समुझाई। लिये दोउ जन पीठि चढ़ाई।
जब सुग्रीव राम कहँ देखा। अतिशय धन्य जन्म करि लेखा।
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेटेउ अनुज सहित रघुनाथा।
कपिके मन विचार यह नीती। करिहहिं विधि मोसन ये प्रीती।

तब हनुमन्त उभय दिशि, कहि सब कथा बुझाइ॥
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

कीन्ह प्रीति कछु बीच न राषा। लक्ष्मण राम चरित सब भाषा।
कह सुग्रीव नयन भरि वारी। मिलिहि नाथ मिथिलेशकुमारी।
मंत्रिन सहित इहां इक वारा। बैठि रहेउँ कछु करत विचारा।
गगन-पन्थ देखी मैं जाता। परवश परी बहुत विलखाता।
राम राम हा राम पुकारी। मम दिशि देखि दीन पट डारी।
मांगा राम तुरत सो दीन्हा। पट उर लाइ शोच अति कीन्हा।
कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। तजहु शोक मन आनहु धीरा।
सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि विधि मिलिहि जानकी आई।

सखा वचन सुनि हरषेउ, रघुपति करुणासीव।
कारण कवन बसहु बन, मोसन कहु सुग्रीव॥

बालिसुग्रीवकी शत्रुताका कारण

थ बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरणि न जाई॥
यसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥
र्द्धरात्रि पुरद्वार पुकारा। बालिहु रिपु बल सहै न पारा॥
ावा बालि देखि सोइ भागा। मैं पुनि गयउँ बन्धु संग लागा॥
िरिवर गुहा पैठि सो जाई। बालि मोहिं तब कहा बुझाई॥
रखेहु मोहिं एक पखवारा। नहिं आवौं तो जानेहु मारा॥
ास दिवस तहँ रहेहुं खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
ब मैं निज मन कीन्ह विचारा। जाना असुर बन्धुकहँ मारा॥
ालि हतेसि मोहिं मारिहि आई। शिला द्वार दै चलेउँ पराई॥
ंत्रिन पुर देखा बिनु सांई। दीन्हेउ राज मोहिं बरिआई॥
ालो ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहिं जिय भेद बढ़ावा॥
िपुसमान मोहिं मारेसि भारी। हरि लीन्हेसि सर्वस अरु नारी॥
ाके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥
हां शापवश आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं॥
ुनि सेवकदुख दीनदयाला। फरकि उठे दोउ भुजा विशाला॥

सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं, बालिहि एकहिं बाण॥
ब्रह्म रुद्र शरणागत, गयेउ न उबरहिं प्राण॥

मित्रके गुण

े न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हैं बिलोकत पातक भारी॥
िज दुख गिरिसम रजकरि जाना। मित्रके दुख रज मेरुसमाना॥

जिनके अस मति सहज न आई। ते शठ हठ कत करत मित
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुण प्रगटै अवगुणहिं दुरा
देत-लेत मन शंक न धरहीं। बल अनुमान सदा हित क
विपति काल कर शतगुण नेहा। श्रुति कह संत मित्रगुण
आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटि
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरे भ

मित्र मित्रसों प्रीति करि, हृदय आन मुख आन॥
जाके मन-वच प्रेम नहिं, दुरे दुराये जान॥

सेवक शठ नृप कृपण कुनारी। कपटी मित्र शूलसम
सखा शोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि करब काज मैं
कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। बालि महाबल अति रण
दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधन कर भइ प
उपजा ज्ञान वचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अ
सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं से
जो कछु कहेउ सत्य सब सोई। सखा वचन मम मृषा

बालि-सुग्रीव युद्ध

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरण नारि समु
सुनु पति जिनहिं मिलां सुग्रीवा। ते दोउ बन्धु तेज बल

शलेशसुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरशी रघुनाथ॥
जो कदाचि मोहि मारिहैं, तौ पुनि होब सनाथ॥

स कहि चला महा अभिमानी। तृण समान सुग्रीवहिं जानी॥
रेउ युगल बाली अति तर्जा। मुष्टिक मारि महा धुनि गर्जा॥
ब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टिप्रहार वज्र सम लागा॥
र परसा सुग्रीव शरीरा। तनु भा कुलिश गई सब पीरा॥
ली कण्ठ सुमनकी माला। पठवा पुनि बल देइ बिशाला॥
नि नानाविधि भई लराई। विटप ओट देखहिं रघुराई॥

बहु छल बल सुग्रीव करि, हृदय हारि भय मानि॥
मारा बालिहिं राम तब, हिये मांझ शर तानि॥

रा विकल महि शरके लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।
य प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितै रामकी ओरा॥
र्महेतु अवतरेहु गुसाईं। मारेहु मोहिं व्याधकी नाईं॥
बैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहिं मारा।
नुजवधू भगिनी सुतनारी। सुनु शठ ये कन्या सम चारी॥
हैं कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
ढ़ तोहिं अतिशय अभिमाना। नारि सिखावन करेसि न काना॥
म भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

सुनहु राम स्वामी सुभग, चल न चातुरी मोरि॥
प्रभु अजहूं मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि॥

रामचरण दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग॥
सुमन माल जिमि कण्ठते, गिरत न जाने नाग॥
राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धा
नानाविधि विलाप कर तारा। छूटे केश न देह सं
पुनि-पुनि तासु शीश उर धरई। वदन विलोकि हृदय महं
तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही

पंचतत्त्वका शरीर

क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित यह अधम श
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम किहि लगि
उपजा ज्ञान चरण तब लागी। लीन्हेसि परम भक्तिवर
उमा दारुयोषितकी नाईं। सबहिं नचावत राम गु

सुग्रीवका अभिषेक

तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कं
राम कहा अनुजहिं समुझाई। राज देहु सुग्रीवहिं
लक्ष्मण तुरत बुलावा, पुरजन विप्र समाज॥
राज्य दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ युवराज॥
सुरनर मुनि सबकी यह रीती। स्वारथ लागि करैं सब
बालित्रास व्याकुल दिन राती। तनु विवरण चिन्ता जर
सो सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कोमल रघुवीर स्व
ऐसे प्रभु कहं जो परिहरहीं। काहे न विपति जाल नर
पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बुलाई। बहु प्रकार नप नीति सि

ग्रीषम बरषाऋतु आई। रहिहौं निकट शैल पर छाई॥
सहित करहु तुम राजू। सन्तत हृदय राखि ममकाजू॥
सुग्रीव भवन फिरि आये। राम प्रवर्षण गिरिपर छाये॥
शिला अति शुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहां दोउ भाई॥
अनुजसन कथा अनेका। भक्ति विरति नृपनीति विवेका॥

वर्षावर्णन

काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये॥
लक्ष्मण देखहु मोरगण, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति जिमि हर्षयुत, विष्णु भक्त कहं देखि॥
मण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥
नि दमकि रही घन माहीं। खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं॥
हिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये॥
अघात सहै गिरि कैसे। खलके वचन सन्त सहैं जैसे॥
नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई॥
परत भा डाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी॥
टि सिमिटि जल भरे तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा॥
ताजल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जन हरि पाई॥
हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पन्थ॥
जिमि पाखण्ड विवादते, लुप्त भये सद्ग्रन्थ॥
धुनि चहुंओर सुहाई। वेद पढ़ै जनु बटु समुदाई॥
पल्लव भे विटप अनेका। साधुके मन जस होइ विवेका॥

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज्य खल उद्यम गय
खोजत पन्थ मिलै नहिं धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महिं दू
ससि सम्पन्न सोह महि कैसे। उपकारीकी सम्पति जै
निशि तम घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिनकर जुरा समा
महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद मा
देखिय चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धर्म प
ऊषर वरषे तृण नहिं जामा। सन्त हृदय जस उपज न का
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। बढ़ै प्रजा जिमि पाइ सुरा
जहँ तहँ पथिक रहे थकि नाना। जिमि इन्द्रियगण उपजै

कबहूं प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं॥
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म नसाहिं॥
कबहुं दिवस महँ निविड़ तम, कबहुंक प्रगट पतंग॥
उपजै विनशै ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग॥

शरद्वर्णन

बरषा विगत शरदऋतु आई। देखहु लक्ष्मण परम सु
फूले कास, सकल महि छाई। जनु वर्षाऋतु प्रगट बु
उदित अगस्त्य पन्थजल शोषा। जिमि लोभहिं शोषै सन्
सरिता जल निर्मल जल सोहा। सन्तहृदय जस गत-मद
रस रस शोष सरित सरपानी। ममता त्याग करहिं जिमि
जानि शरदऋतु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सु

त रेणु सोह अस धरणी। नीति निपुण नृपकी जस करणी॥
संकोच विकल भये मीना। विबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥
घन निर्मल सोह अकाशा। जिमि हरिजन परिहर सब आशा॥
कहुं वृष्टि शारदी थोरी। कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी॥

चले हर्षि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि॥
जिमि हरिभक्ती पाइ जन, तजहिं आश्रमी चारि॥

मीन जहं नीर अगाधा। जिमि हरिशरण न एकौ बाधा॥
कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे॥
त मधुकर निकर अनूपा। सुन्दर खगरव नाना रूपा॥
वाक मनदुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन परसंपति देखी॥
तक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न शंकरद्रोही॥
दातप निशि शशि अपहरई। सन्तदरश जिमि पातक टरई॥
हिं विधु चकोर समुदाई। चितवहिं हरिजन हरि जिमि पाई॥
क दंश बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किये कुलनासा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरदऋतु पाइ॥
सद्गुरु मिले ते जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाइ॥

गत निर्मलऋतु आई। सुधि न तात सीताकी पाई॥
कार कैसेहुं सुधि पावौं। कालहु जीति निमिष महँ लावौं॥
वहुं सुधि मोरि बिसारी। पावा राज्य कोष पुरनारी॥

सुग्रीवको धमकी

सायक मैं मारा बाली। तेहिशर हतौं मूढ़ कहँ काली॥

लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

तब अनुजहिं समुझावा, रघुपति करुणा-सींव॥
भय देखाय लै आवहु, तात सखा सुग्रीव॥

यहां पवनसुत हृदय विचारा। रामकाज सुग्रीव बिसारा॥
निकट जाइ चरणन शिर नावा। चारिहु विधि तेहि कहि समुझावा॥
सुनि सुग्रीव परम भय माना। विषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ वानर यूहा॥
तब हनुमन्त बुलाये दूता। सबकर करि सन्मान बहूता॥
भय अरु प्रीति नीति दिखराई। चले सकल चरणन शिर नाई॥
तेहि अवसर लक्ष्मण पुर आये। क्रोध देखि जहँ तहं कपि धाये॥
तब कपीश चरणन शिर नावा। गहि भुज लक्ष्मण कंठ लगावा॥
नाथ विषयसममद कछु नाहीं। मुनिमन मोह करै क्षण माहीं॥
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहिविधि गये दूतसमुदाई॥

हर्षि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपिसाथ॥
राम अनुज आगे किये, आये जहँ रघुनाथ॥

नाय चरण सिर कह करजोरी। नाथ मोरि कछु नाहिन खोरी॥
अतिशय प्रबल देव तव माया। छूटै तबहिं करहु जब दाया॥
विषयविवश सुरनर मुनि स्वामी। मैं पामर पशु कपि अतिकामी॥
नारि नयन शर जाहि न: लागा। महाघोरनिशि सोवत जागा॥
लोभ-पाश जिहि गर न बंधाया। सो नर तुमसमान रघुराया॥
यह गुण साधनते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥
तब रघुपति बोले मुसुकाई. तुम प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई॥

अब सोइ यतन करहु मनलाई। जेहिविधि सीताकी सुधि पाई॥
इहि विधि होत बतकही, आये वानर यूथ॥
नाना बरन अतुल बल, देखिय कीश बरूथ॥
अस कपि एक न सेना माहीं। रामकुशल पूंछी जिहि नाहीं॥
ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कहि सुग्रीव सबहिं समुझाई॥
रामकाज अरु मोर निहोरा। बानर यूथ जाहु चहुं ओरा॥
जनकसुता कहँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आयहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये। अवशि मरिहि सो ममकर आये॥
बचन सुनत सब वानर, जहं तहँ चले तुरन्त॥
तब सुग्रीव बुलायउ, अंगदादि हनुमन्त॥
सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवन्त मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दक्षिण जाहू। सीता सुधि पूंछेहु सब काहू॥
मनवच क्रम सो यतन विचारेहु। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु॥
भानुपीठ सेइय उर आगी। स्वामी सेइय सब छलत्यागी॥
तजि माया सेइय परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव शोका॥
आयसु मांगि चरण शिरनाई। चले सकल सुमिरत रघुराई॥
पाछे पवनतनय शिरनावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥
परसा शीश सरोरुह-पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जनजानी॥
बहुप्रकार सीतहिं समुझायहु। कहि बल वीर वेगि तुम आयहु॥
हनुमत जन्म सफल करि जाना। चले हृदय धरि कृपानिधाना॥
चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लवलीन मन, विसरा तनु कर छोह॥

कतहुं होइ निशिचरसन भेंटा। प्राण लेहिं इक एक चपेटा॥
इहां विचारहि कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥

सम्पातीसे वानरों की बातचीत

यहि विधि कहत कथा बहु भांती। गिरिकन्दरा सुना सम्पाती॥
बाहर होइ देखे सब कीशा। मोहिं अहार दीन्ह जगदीशा॥
आजु सबन कहँ भक्षण करऊँ। दिन बहु गये अहार बिनु मरऊँ॥
कबहुं न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा॥
डरपे गृद्धबचन सुनि काना। अब भा मरण सत्य हम जाना॥
कह विचारि अंगद मन माहीं। धन्य जटायु सरिस कोउ नाहीं॥
रामकाज कारण तनु त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी॥
सुनि खग हर्षशोकयुत बानी। आवा निकट कपिन भय मानी॥
सुनि सम्पाति बन्धुकी करणी। रघुपति महिमा बहुविधि बरणी॥
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहं रह रावण सहज अशंका॥
तहां अशोक वाटिका अहई। सीय वैठि तहं शोचति रहई॥
अंगद कहा जाउँ मैं पारा। जिय संशय कछु फिरती बारा॥
जाम्बवंत कह तुम सब लायक। किमि पठवौं सबहीकर नायक॥
कहा ऋच्छपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवनतनय बल पवन समाना। बुधि-विवेक विज्ञाननिधाना॥
कौन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहिं तात होइ तुम पाहीं॥

कपिसेन संग संहारि निशिचर राम सीतहिं आनिहैं।
त्रयलोक पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥

जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावहीं।
रघुवीर-पद-पाथोज-मधुकर दास तुलसी गावहीं॥
भव-भेषज रघुनाथ-यश, सुनै जो नर अरु नारि।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्धि करहिं त्रिपुरारि॥
नीलोत्पल तनु श्याम, काम कोटि शोभा अधिक।
सुनिय तासु गुणग्राम, जासु नाम अघखग वधिक॥

* किष्किन्धाकाण्ड समाप्त *

अथ सुन्दरकाण्ड

::*

जाम्बवन्तके वचन सुहाये। सुनि हनुमान हृदय अति भाये॥
तबलगि मोहिं परेखेहु भाई। सहि दुख कन्द मूल फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहि देषी। होइ काज मन हर्ष विशेषी॥
अस कहि नाइ सबनि कहँ माथा। चले हर्षि हियधरि रघुनाथा॥

सुरसाका परीक्षा लेना

जात पवनसुत देवन देषा। जाना चह बल बुद्धि विशेषा॥
सुरसा नाम अहिनकी माता। पठयहु आइ कहो तेहिं वाता॥
आजु सुरन्ह मोहिं दीन्ह अहारा। सुनि हंसि बोला पवनकुमारा॥
राम काज करि फिरि मैं आवों। सोताकी सुधि प्रभुहिं सुनावों॥
तब तव वदन पैठिहौं आई। सत्य कहौं मोहिं जान दे माई॥
कवनिहुं यतन देहि नहिं जाना। ग्रसत्रि न मोहिं कहा हनुमाना॥
योजन भरि तेइ वदन पसारा। कपि तनु कोन्ह दुगुन विस्तारा॥
जस जस सुरसा वदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप दिखावा॥
शतयोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघुरूप पवनसुत लीन्हा॥
बदन पैठि पुनि वाहर आवा। मांगी विदा ताहि शिर नावा॥
मोहिं सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मर्म तोर मैं पावा॥

रामकाज सब करिहहु, तुम बल-बुद्धि-निधान।
आशिष दै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान॥

गिरिपर चढ़ि लंका तेइँ देषी। कहि न जाइ अति दुर्ग विशेषी॥
अति उतंग जलनिधि चहुंपासा। कनक कोटकर परम प्रकासा॥

कनककोट विचित्र मणिकृत सुन्दराजित अति घना।
चौहट्ट हाट सुघट्ट बीथी चारु पुर बहुविधि बना॥
गजवाजि-खच्चरनिकर पदचर रथवरूथनि को गनै।
बहु रूप निशिचरयूथ अतिबल सेन वर्णत नहिं बनै॥
बनबाग उपवन वाटिका सरकूप वापी सोहहीं।
नर-नाग-सुर-गन्धर्व-कन्या-रूप मुनिमन मोहहीं॥
कहुं मल्ल देह विशाल शैल समान अति बल गर्जहीं।
नाना अखारन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं॥
करि यतन भट कोटिन्ह विकट तनु नगर बहु दिशि रक्षहीं।
कहुं महिष मानुष धेनु खर अज खल निशाचर भक्षहीं॥
इहिलागि तुलसीदास इनकी कथा संक्षेपहि कही।
रघुवीरशर-तीरथ-सरित तनु त्यागि गति पैहैं सही॥

हनुमानका लङ्काप्रवेश

पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार॥
अति लघुरूप धरौं निशि, नगर करौं पैसार॥

मशक समान रूप कपि धरी। लंका चले सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निशिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥

जानेसि नाहिं मर्म शठ मोरा। मोर अहार लंक कर चोरा॥
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी। रुधिर वमत धरणी ढनमनी॥
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पाणि कर विनय सशंका॥
जब रावणहिं ब्रह्म वर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहिं चीन्हा॥
विकल होसि जब कपिके मारे। तब जानेसि निशिचर संहारे॥
तात मोर अति पुण्य बहूता। देखेउँ नयन रामकर दूता॥

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरी तुला इक अंग॥
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

प्रविशि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोशलपुर-राजा॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥
गरुअ सुमेरु रेणुसम ताही। राम कृपाकरि चितवहिं जाही॥
अति लघुरूप धरेउ हनुमाना। पैठेउ नगर सुमिरि भगवाना॥
मन्दिर मन्दिर प्रतिकरि शोधा। देखे जहँ तहँ अगणित योधा॥
गयउ दशानन मन्दिर माहीं। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं॥
शयन किये देखा कपि तेही। मन्दिरमहँ न दीख वैदेही॥

विभीषणसे भेंट

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामनाम अंकित गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा॥
लंका निशिचरनिकर-निवासा। इहां कहां सज्जनकर वासा॥
मनमहँ तर्क करन कपि लागे। ताही समय विभीषण जागे॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदय हर्ष कपि सज्जन चीन्हा॥

इहिसन हठ करिहौं पहिंचानी। साधुते होइ न कारजहानी॥
विप्र रूप धरि वचन सुनावा। सुनत विभीषण उठि तहँ आवा॥
करि प्रणाम पूंछी कुशलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन-अनुरागी। आयहु मोहिं करन बड़भागी॥

तब हनुमन्त कही सब, रामकथा निज नाम॥
सुनत युगल तनु पुलक अति, मगन सुमिरि गुनग्राम॥

सुनहु पवनसुत रहनिहमारी। जिमि दसननमहँ जीभ विचारी॥
पुनि सब कथा विभीषण कही। जेहि विधि जनकसुता जहँ रही॥
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता। देखा चहौं जानकी माता।
युक्ति विभीषणं सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत विदा कराई॥
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवां। वन अशोक सीता रहँ जहवां
देखि मनहिंमन कीन्ह प्रनामा। बैठे वीति गई निशियामा॥
कृश तनु शीश जटा इक वेणी। जपति सदा रघुपति गुण श्रेणी॥

निजपद नयन दिये मन, रामचरण महँ लीन॥
परम दुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन॥

रावणका सीताको धमकाना

तेहि अवसर रावण तहँ आवा। संग नारि वहु किये बनावा॥
वहु विधि खल सीतहिं समुझावा। सामदाम भय भेद दिखावा॥
कह रावण सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करौं प्रण मोरा। एक बार विलोकु मम ओरा।

तृण धरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परमसनेही॥
सुनु दशमुख खद्योत प्रकाशा। कबहुं कि नलिनी करहिं विकाशा॥
अस मन समुझत कहत जानकी। खल नहिं सुधि रघुबीर बानकी॥
शठ सूने हरि आनेसि मोहीं। अधम निलज्ज लाज़ नहिं तोहीं॥

आपुहिं सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान॥
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥

सीता तैं कृत मम अपमाना। तव सिर काटौं कठिन कृपाना॥
नाहिंत सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति नतु जीवन हानी॥
स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करिकर सम दशकन्धर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा॥
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निशिचरी बुलाई। सीतहिं त्रास दिखावहु जाई॥
मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारव कठिन कृपाना॥

भवन गयउ दशकन्ध तब, इहां निशाचरि वृन्द॥
सीतहिं त्रास दिखावहीं, धरहिं रूप बहु मन्द॥
जहँ तहँ गईं सकल मिलि, सीताके मन सोच॥
मास दिवस बीते ज्ञु मोहिं, मारिहि निशिचर पोच॥

सीताकी विरहव्याकुलता

त्रिजटासन बोली करजोरी। मातु विपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु वेगि उपाई। दुसह विरह अब सहा न जाई॥
आनि काठ रचि चिता बनाई। मातु अनल तुम देहु लगाई॥

सत्य करहु मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवण शूलसम वानी।
सुनत वचन पद गहि समुझावा। प्रभु-प्रताप-बल-सुयश सुनावा॥
निशि न अनल मिलु राजकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।
कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलै न पावक मिटै न शूला॥

हनुमानकी सीतासे भेंट

कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तव।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हर्ष उठि कर गहेउ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर॥
चकित चितै मुद्रिक पहिंचानी। हर्ष विषाद हृदय अकुलानी॥
सीता मन विचार कर नाना। मधुर वचन वोले हनुमाना॥
रामचन्द्र-गुण वर्णन लागे। सुनतहिं सीताके दुख भागे॥
लागी सुनै श्रवण मन लाई। आदिहिंते सव कथा सुनाई॥
श्रवणामृत जेहिं कथा सुनाई। कहु सो प्रगट होत किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि वैठी मन विस्मय भयऊ॥
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुणा निधानकी॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्ह राम तुम कहं सहिदानी॥

कपिके वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास।
जाना मन-क्रम-वचन यह, कृपासिन्धु कर दास॥

बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहँ जलयाना॥
अब कहु कुशल जाउँ वलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

सहज बानि सेवक-सुख-दायक । कबहुंकि मोहिं सुमिरत रघुनायक
कबहुं नयन मम शीतल ताता । होइहिं निरखि श्याम मृदुगाता
वचन न आव नयन भरि वारी । अहो नाथ मोहिं निपट बिसारी
देखि विरह व्याकुल अति सीता । बोलेउ कपि मृदु वचन विनीता

रघुपतिके सन्देश अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्गद भयेउ, भरे विलोचन नीर॥

राम वियोग कहा सुनु सीता । मोकहँ सकल भयउ विपरीता
नूतन किशलय मनहु कृशानू । काल निशा सम निशि शशि भानू
कुवलय-विपिन कुन्तवन सरिसा। वारिद तप्त तेल जनु बरिसा
जेहि तरु रहौं करत सो पीरा । उरग श्वास सम त्रिविध समीरा
कहेहु ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति–रस इतनेहिं माहीं
प्रभुसन्देश सुनत वैदेही । मगनप्रेम तनुसुधि नहिं तेही
कह कपि हृदय धीर धरु माता । सुमिरि राम सेवक-सुखदाता
उर आनहु रघुपति प्रभुताई । सुनि मम वचन तजहु विकलाई

निशिचरनिकर पतंग सम, रघुपतिबान कृशानु।
जननि हृदय निज धीर धरु, जरे निशाचर जानु॥

जो रघुवीर होत सुधि पाई । करते नहिं विलम्ब रघुराई
रामबाण रवि उदय जानकी । तम बरूथ कहं यातुधान की
अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित ऐहैं रघुवीरा

निशिचर मारि तुमहिं लै जैहैं । तिहुंपुर नारदादि यश गैहैं ॥
हैं सुत कपि सब तुम्हैं समाना । यातुधान भट अति बलवाना ॥
मोरे हृदय परम सन्देहा । सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ॥
कनक भूधराकार शरीरा । समर भयङ्कर अति रणधीरा ॥
सीता-मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवन-सुत लयऊ ॥

सुनु माता शाखामृगहिं, नहिं बल बुद्धि विशाल ।
प्रभु प्रतापते गरुड़हीं, खाय परम लघु व्याल ॥

आशिष दीन्ह रामप्रिय जाना । होहु तात बल-बुद्धि-निधाना ॥
अब कृतकृत्य भयउं मैं माता । आशिष तव अमोघ विख्याता ॥
सुनहु मातु मोहिं अतिशय भूखा । लागि देखि सुन्दर फल रूखा ॥
सुनु सुत कर विपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी ॥
तिनकर भय माता मोहिं नाहीं । जो तुम सुख मानहु मन माहीं ॥

देखि बुद्धि-बल-निपुण कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति-चरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥

हनुमानसे राक्षसोंकी लड़ाई

चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा । फल खाये तरु तोरन लागा ॥
रहे तहां बहु भट रखवारे । कछु मारे कछु जाइ पुकारे ॥
सुनि रावण पठये भट नाना । तिनहिं देखि गरजा हनुमाना ॥
सब रजनीचर कपि संहारे । गये पुकारत कछु अधमारे ॥
पुनि पठवा तेहि अक्षकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ॥
आवत देखि विटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महा धुनि गर्जा ॥

कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछुक मिलायसि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि॥

सुनि सुत-वध लंकेश रिसाना। पठवा मेघनाद बलवाना॥
कपि देखा दारुण भट आवा। कटकटाइ गरजा अरु धावा॥
अति विशाल तरु एक उपारा। विरथ कीन्ह लंकेश-कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्देसि निज अंगा॥
तिन्हैं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे युगल मानहुं गजराजा॥
मुष्टिक मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक क्षण मूर्च्छा आई॥
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजनजाया॥

हनुमानका नागफांसमें बंधन।

ब्रह्मअस्त्र तेहि साधेउ, कपि मन कीन्ह विचार।
जो न ब्रह्मशर मानऊँ, महिमा मिटै अपार॥

ब्रह्मबाण तेहि कपि कहँ मारा। परतिहु बार कटक संहारा॥
तेहि देखा कपि मूर्च्छित भयऊ। नागफांस बांधेसि लै गयऊ॥
दशमुख सभा दीख कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
देखि प्रताप न कपि-मन-शङ्का। जिमि अहिगन महँ गरुड़ अशङ्का॥

कपिहिं विलोकि दशानन, बिहँसि कहेसि दुर्वाद।
सुत-वध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद॥

कह लंकेश कवन तैं कीसा। केहिके बल घालेसि वन खीसा॥
कीधौं श्रवण सुनेसि नहिं मोहीं। देखौं अति अशङ्क शठ तोहीं॥
मारेसि निशिचर केहि अपराधा। कहु शठ तोहि न प्रानकी बाधा॥

जांके बल लवलेश ते, जितेउ चराचर झारि।
तासु दूत हौं जाहिको, हरि आनेहु प्रिय नारि॥
प्रणतपाल रघुवंश-मणि, करुणासिन्धु खरारि।
गये शरण प्रभु राखिहैं, तव अपराध विसारि॥
मोह-मूल-बहु-शूल-प्रद, त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायकहिं, कृपासिन्धु भगवान॥

यदपि कही कपि अति हितवानी। भक्ति-विवेक-धर्म-मय सानी॥
बोला विहँसि अधम अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुरु बड़ज्ञानी॥
सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना। वेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निशाचर मारने धाये। सचिवन सहित विभीषण आये॥
नाइ शीश करि विनय बहूता। नीति-विरोध न मारिय दूता॥

हनुमानकी पूंछ जलानेकी तैयारी

कपिकर ममता पूंछ पर, सबहिं कहा समुझाइ।
तेल बोरि पट बांधि पुनि, पावक देहु लगाइ॥

पूंछ-हीन वानर जब जाइहि। तब शठ निज नाथहिं लै आइहि॥
जिन्हकी कीन्हेसि अमित बड़ाई। देखौं मैं तिन्हकी प्रभुताई॥
वचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय शारद मैं जाना॥
यातुधान सुनि रावण-वचना। लागे रचन मूढ़ सोइ रचना॥
रहा न नगर वसन घृत तेला। बाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि कपि पूंछ प्रजारी॥

लङ्का-दहन

पावक जरत दीख हनुमन्ता । भयउ परम लघु रूप तुरंता ॥
हरि प्रेरित तेहि अवसर, वहे पवन उञ्चास ।
अट्टहास करि गरजेउ, कपि वढ़ि लाग अकास ॥
जारा नगर निमिष एक माहीं । एक विभीषणको गृह नाहीं ॥
जाकर भक्त अनल जेइँ सिरजा । जरा न सो तेहि कारण गिरजा ॥
उलटि पलटि लङ्का कपि जारी । कूदि परा पुनि सिन्धु मंझारी ॥
पूंछ वुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि ।
जनक सुताके आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥
मातु मोहिं दीजै कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा ॥
चूड़ामणि उतारि तव दीन्हा । हर्ष समेत पवनसुत लीन्हा ॥
कहेहु तात अस मोर प्रणामा । सब प्रकार प्रभु पूरणकामा ॥
मास दिवस महँ नाथ न आवहिं । तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावहिं ॥
कहु कपि केहि विधि राखौं प्राना । तुमहूं तात कहत अब जाना ॥
जनकसुतहिं समुझाइ करि, वहुविधि धीरज दीन्ह ।
चरण कमल सिर नाइ करि, गमन राम पहं कीन्ह ॥
नांघि सिंधु यहि पारहि आवा । शब्द किलकिला कपिन सुनावा ॥
हर्षे सब विलोकि हनुमाना । नूतन जन्म कपिन तब जाना ॥
तब मधुवन भीतर सब आये । अंगद सहित मधुर फल खाये ॥
रखवारे जब बरजन लागे । मुष्टि प्रहार करत सब भागे ॥
प्रीति सहित भेटे सकल, रघुपति करुणा-पुंज ।
पूंछा कुशल कुशल अव, नाथ देखि पदकंज ॥

नाथ पवनसुत कीन्ह जो करणी। सो मुख लाखहु जाहि न बरणी ॥
पवन-तनय के बचन सुहाये। जाम्बवन्त रघुपतिहिं सुनाये ॥
सुनि कृपालु उठि हृदय लगाये। जानि सुभट रघुपति मन भाये ॥

जानकीकी दशाका वर्णन

कहहु तात केहि भांति जानकी। रहति करति रक्षा स्वप्रानकी ॥

नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद-यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट ॥

चलती बार कहेउ मोहिं टेरी। सुरति कराय शक्रसुत केरी ॥
चलत मोहिं चूणामणि दीन्हो। रघुपति हृदय लाइ तेहि लीन्हों ॥
नाथ युगल लोचन भरि बारी। बचन कहेउ कछु जनक कुमारी ॥
अवगुण मोर एक मैं जाना। बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ॥
विरह अग्नि तनु तूल समीरा। श्वास जरै क्षण मांह शरीरा ॥
नयन स्रवै जल निज हित लागी। जरै न पाव देह विरहागी ॥
सीताकी अति बिपत्ति विशाला। बिना कहे भल दीनदयाला ॥

निमिष निमिष करुणायतन, जाहिं कल्पशत बीति ।
बेगि चलिय प्रभु आनिये, भुजबल खलदल जीति ॥

सुनि सीता-दुख प्रभु सुख-अयना। भरि आये जल राजिव-नयना ॥
सुनु कपि तोहिं समान उपकारी। नहिं कोउ सुरनरमुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख होइ न सकत मनमोरा ॥

सुनि प्रभु-वचन बिलोकि मुख, हृदय हर्ष हनुमन्त ।
चरण परेउ परमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ॥

कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥
कहु कपि रावण पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोले वचन विगत अभिमाना॥
ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल।
तव प्रताप बड़वानलहिं, जारि सकै खल तूल॥

लङ्कापर चढ़ाई करनेकी तैयारी

तब रघुपति कपिपतिहिं बुलावा। कहा चलै कर करहु बनावा॥
अब विलम्ब केहि कारण कीजै। तुरत कपिन कहँ आयसु दीजै॥
चला कटक को बरणै पारा। गरजहिं बानर भालु अपारा॥
नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥
इहि विधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लगे खान फल, भालु विपुल कपि बीर॥
वहां निशाचर रहहिं सशंका। जबते जारि गयउ कपि लंका॥

मन्दोदरीकी हितकर वाणी

अति सभीत सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी हृदय अकुलानी॥
रही जोरि कर पति-पद लागी। बोली वचन नीति-रस-पागी॥
कन्त कर्ष हरिसन परिहरहु। मोर कहा अति हित चित धरहू॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई। पठवहु कन्त जो चहहु भलाई॥
श्रवण सुनत शठ ताकी बानी। विहँसा जगत विदित अभिमानी॥

भय स्वभाव नारि कर सांचा। मंगल माहिं अमंगल रांचा॥
बैठेउ सभा खबर अस पाई। सिन्धुपार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं। नर वानर केहि लेखे माहीं॥

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तनु तीन कर, होइ वेगही नाश॥

रावणकी सभामें विभीषणका तिरस्कार

अवसर जानि विभीषण आवा। भ्राता-चरण शीश तेहिं नावा॥
पुनि शिर नाइ बैठि निज आसन। बोला वचन पाइ अनुशासन॥
जो कृपालु पूंछेहु मोहिं बाता। मति अनुरूप कहब हम ताता॥
जो आपन चाहो कल्याना। सुयश सुमति शुभगति सुखनाना॥
सो परनारि लिलार गुसाईं। तजौ चौथि चंदाकी नाईं॥
चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई॥
गुणसागर नागर नर जोऊ। अल्प लोभ भल कहै न कोऊ॥

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पन्थ।
सब परिहरि रघुवीर-पद, भजहु कहहिं सदग्रन्थ॥

तजहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही। भजहु राम बिनुकामसनेही॥
शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा। विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु वचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीतिविभूषण। सोइ उर धरहु जो कहत विभीषण॥
रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ। दूरि न करहु इहां है कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहेउ विभीषण पुनि कर जोरी॥

सुमति कुमति सबके उर रहई। नाथ पुराण निगम अस कहीं
जहां सुमति तहँ सम्पति नाना। जहां कुमति तहँ बिपति निदाना
तव उर कुमति बसी बिपरीती। हित अनहित मानत रिपुप्रीती
कालरात्रि निशिचर कुलकेरी। तेहि सीतापर प्रीति घनेरी

तात चरण गहि मांगौं, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहँ, अति हित होइ तुम्हार॥

बुध-पुराण-श्रुति-सम्मत बानी। कही बिभीषण नीति बखानी
सुनत दशानन उठा रिसाई। खल तोहिं मृत्यु निकट चलि आई
ममपुर बसि तपसिन सन प्रीती। शठ मिलु जाहि ताहि कह नीती
अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा। अनुज गहे पद बारहि बारा
उमा संतकी यही बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई
तुम पितु सरिस भले मोहिं मारा। राम भजे हित होइ तुम्हारा
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ

राम सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालबश तोरि।
मैं रघुनायक शरण अब, जाउं देहु जनि खोरि॥

साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कर हानी
यह विधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिन्धुके पारा

राम दलमें विभीषण

कपिन विभीषण आवत देखा। जानेउ कोउ रिपुदूत विशेषा
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दशानन भाई

शरणागत कहँ जो तजहिं, निज अनहित अनुमानि॥
ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि॥

जौं दुइ लेन पठवा दशशीशा । तबहुं न कछु भय हानि कपीशा ॥
जगमहं सखा निशाचर जेते । लक्ष्मण हनहिं निमिष महं तेते ॥
उभय भांति लै आवहु, हँसिकह कृपानिधान ॥
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगदादि हनुमान ॥
सादर तेंहिं आगे करि बानर । चले जहां रघुपति करुणाकर ॥
दूरिहिते देखे दोउ भ्राता । नयनानन्द-दानके दाता ॥
नयननीर पुलकित अतिगाता । मन धरि धीर कही मृदुबाता ॥

राम-विभीषण-संवाद

नाथ दशानन कर मैं भ्राता । निशिचर-वंश-जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा । यथा उलूकहिं तम पर नेहा ॥
श्रवण सुयश सुनि आयऊं, प्रभुभंजन-भय-भीर ॥
त्राहि त्राहि आरत-हरण, शरण सुखद रघुवीर ॥
अस कहि करत दण्डवत देषा । तुरत उठे प्रभु हर्ष विशेषा ॥
अनुजसहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भक्त-हितकारी ॥
कहु लंकेश सहित परिवारा । कुशल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल मण्डली बसहु दिनराती । सखा धर्म निबहै केहि भांती ॥
मैं जानी तुम्हारि सब रीती । अतिशय निपुण न भाव अनीती ॥
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देहि विधाता ॥
अब पद देखि कुशल रघुराया । जो तुम कीन्ह जानि जन दाया ॥
तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद नाना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप-शायक कटि भाथा ॥

ममता तिमिरवरुण अंधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी
तबलगि बसत जीव उर माहीं । जब लगि प्रभुप्रताप रविनाहीं
अब मैं कुशल मिटे भयभारे । देखि राम पद-कमल तुम्हारे
तुम कृपालु जापर अनुकूला । ताहि न व्याप-त्रिविध भवशूला
मैं निशिचर अति अधम सुभाऊ । शुभ आचरण कीन्ह नहिं काऊ
जो स्वरूप मुनि ध्यान न पावा । सो प्रभु हर्षि हृदय मोहिं लावा
सुनहु सखा निज कहहुं सुभाऊ । जानि भुशुण्डि शम्भु गिरजाऊ
जो नर होइ चराचरद्रोही । आवै सभय शरण तकि मोही
तजि मद मोह कपट छल नाना । करौं सखा तेहि साधु समाना
जननी-जनक-बन्धु-सुत-दारा । तन-धन-भवन-सुहृद-परिवारा
सबके ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बांधि बटि डोरी
समदरशी इच्छा कछु नाहीं । हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसत धन जैसे

विभीषणको राजतिलक देना

तुम सारिखे सतत प्रिय मोरे । धरौं देह नहिं आन निहोरे

सगुण उपासक परमहित, निरत नीति दृढ़ नेम ॥
ते नर प्राण समान मोहिं, जिनके द्विजपद प्रेम ॥

सुनु लंकेश सकल गुण तोरे । ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे
यदपि सखा तोहिं इच्छा नाहीं । मम दर्शन अमोघ जगमाहीं
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन वृष्टि नभ भयउ अपारा

रावण क्रोधानल सरिस, श्वास समीर प्रचण्ड ।
जरत विभीषण राखेउ, दीन्हेंउ राज अखण्ड ॥

ले वचन नीति-प्रतिपालक । कारण मनुज दनुज-कुलघालक ॥

समुद्र पार करनेके लिये परामर्श

नु कपीश लंकापति वीरा । केहि विधि उतरिय जलधि गंभीरा ॥
ह लंकेश सुनहु रघुनायक । कोटि सिन्धु सोषै तव सायक ॥
पि तदपि नीति अस गाई । विनय करिय सागर पहं जाई ॥

प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि ।
विनु प्रयास सागर तरहिं, सकल भालु कपि झारि ॥

खा कहेउ तुम नीक उपाई । करव दैव जो होइ सहाई ॥
त्र न यह लक्ष्मण-मन भावा । राम-वचन सुनि अति दुख पावा ॥
थ दैवकर कवन भरोसा । सोषिय सिन्धु करिय मन रोसा ॥
दर मनकर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥
नत विहँसि बोले रघुवीरा । ऐसेहु करव धरहु मन धीरा ॥
स कहि प्रभु अनुजहिं समुझाई । सिन्धु समीप गये रघुराई ॥
थम प्रणाम कीन्ह प्रभु जाई । बैठे तट पुनि दर्भ डसाई ॥

रावणके दूतों ने क्या देखा

हिं विभीषण प्रभु पहं आये । पाछे रावण दूत पठाये ॥
पुकर दूत कपिन जब जाना । ताहि बांधि कपिपति पहं आना ॥
ह सुग्रीव सुनहु सबै वनचर । अंग भंग कर पठवहु निशिचर ॥
हु प्रकार मारन कपि लागे । दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥
हमार हर नासा काना । तेहि कोशलाधीश कर आना ॥
नि लक्ष्मण तेहि निकट बुलाई । दया लागि हँसि दीन छुड़ाई ॥

रावण कहँ दीन्हेउ यह पाती । लक्ष्मण वचन बांचु कुलघा
कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देश उदार॥
सीता देइ मिलहु नतु, आवा काल तुम्हार॥
तुरत नाइ लक्ष्मणपद माथा । चला दूत वर्णत, गुणगा
कहत राम-यश लंका आवा । रावण-चरण शीश तिन ना
विहँसि दशानन पूछेसि बाता । कहसि न शुक आपनि कुशला
पुनि कह कुशल विभीषण केरी । जासु मृत्यु आई अति ने
पुनि कहु भालु कीश कटकाई । कठिन काल प्रेरित चलि आ
कहु तपसिन कर बात बहोरी । जिनके हृदय त्रास बड़ मो
भई भेंट की फिरि गये, श्रवण सुयश सुनि मोर॥
कहसि न रिपुदल तेज बल, कस चकित चित तोर॥
नाथ कृपा करि पूंछेहु जैसे । मानहु वचन क्रोध तजि तै
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं राम तिलक तेहिं सा
रावणदूत हमहिं सुनि काना । कपिन बांधि दीन्हें दुख ना
श्रवन नासिका काटन लागे । रामसपथ दीन्ही तब त्या
पूंछेहु नाथ कीस कटकाई । बदन कोटि सत बरनि न जा
जेइं पुर दहेउ बधेउ सुत तोरा । सकल कपिन महं तेहि बल थो
अमित नाम भट कठिन कराला । विपुल बरन तनु तेज बिसा
नाथ कटक महं सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहिं जीतहिं रन मा
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा । आयसु पै न देहिं रघुना
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई । रिपुबल-बुद्धि-थाह मैं पा
सचिव सभीत विभीषण जाके । बिजय बिभूति कहां लगि ता

सुनि खल-वचन दूत रिसि बाढ़ी । समय बिचारि पत्रिका काढ़ी ॥
राम अनुज दीन्ही यह पाती । नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती ॥
बिहँसि बामकर लीन्हेसि रावण । सचिव बोलि सठ लागु बचावन ॥
सुनत सभय मन महं मुसुकाई । कहत दशानन सबहिं सुनाई ॥
भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर बागविलासा ॥
कह शुक नाथ सत्य सब बानी । समझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी ॥
सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु बिरोधा ॥
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै । इतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥
जब तेइं देन कहेउ वैदेही । चरण प्रहार कीन्ह सठ तेही ॥
चरण नाइ सिर चला सो तहंवा । कृपासिन्धु रघुनायक जहंवा ॥

समुद्रपर रामका क्रोध

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति ॥
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥

लक्ष्मण बाण शरासन आनू । सोषौं वारिध विशिष कृशानू ॥
सठसन विनय कुटिलसन प्रीती । सहज कृपनसन सुन्दर नीती ॥
ममतारत-सन ज्ञान कहानी । अतिलोभी-सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहिं शम कामिहिं हरिकथा । ऊषर बीज बये फल यथा ॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लक्ष्मणके मन भावा ॥
सन्धानेउ शर विशिष कराला । उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला ॥
मकर-उरग-झषगण अकुलाने । जरत जन्तु जलनिधि जब जाने ॥
कनकथार भरि मणिगणनाना । विप्ररूप आये तजि माना ॥

काटे पै कदली फरै, कोटि यतन करि सींच॥
विनय न मान खगेश सुनु, डांटेहिं पै नव नीच॥

समुद्रका आत्मसमर्पण

सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे। क्षमहु नाथ सब अवगुन मे
गगन-समीर-अनल-जल-धरनी। इनकी नाथ सहज जड़ करनी
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु वेगि जो तुमहिं सोहा
सुनत विनीत वचन अति, कह कृपालु मुसुकाइ॥
जेहि विधि उतरै कपि कटक, तात सो करहु उपाइ॥
नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं ऋषि-आशिष पा
तिनके परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हा
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं वल अनुमान सहा
इहि विधि नाथ पयोधि वंधाइय। जेहि तव सुयश लोक तिहुं गाइ
इह शर मम उत्तर तट वासी। हतहु नाथ खलगण अघरा
देखि राम-बल अतुलित भारी। हर्षि पयोनिधि भयो सुखा

* सुन्दरकाण्ड समाप्त *

अथ लंकाकाण्ड

सिंधुवचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब विलम्ब केहि काज, रचहु सेतु उतरै कटक॥

रामेश्वरकी स्थापना

ाम्बवन्त बोलेउ दोउ भाई। नल नीलहिं सब कथा सुनाई॥
ामप्रताप सुमिरि उर माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥
ोलि लिये कपि निकट बहोरी। सकल सुनहु विनती इक मोरी॥
ामचरणपंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥
ावहु मर्कट विकट वरूथा। आवहु विटप गिरिनके यूथा॥

अति उतंग तरु शैल गण, लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नील कहं, बिचरहिं सेतु बनाइ॥

खि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहंसि कृपानिधि बोले बचना॥
रमरम्य सुन्दर यह धरणी। महिमा अमित जाइ नहिं बरणी॥
रिहौं इहाँ शम्भु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना॥
ुनि कपीश बहु दूत पठाये। मुनिवर निकर बोलि लै आये॥
ंग थापि विधिवत करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा॥

शिवद्रोही मम दास कहावै । सो नर सपनेहु मोहिं न भा
शंकरविमुख भक्ति चह मोरी । सो नर मूढ़ मंद मति थो

शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महं बास॥

जो रामेश्वर दर्शन करिहैं । सो तनु तजि मम धाम सिध
जो गंगा जल आनि चढ़ाइह । सो सायुज्य मुक्ति नर पा
होइ अकाम जो छल तजि सेइह । भक्ति मोरि तेहिं शंकर दे
ममकृत सेतु जो दर्शन करिहैं । सो बिनु श्रम भवसागर त
रामवचन सबके मन भाये । मुनिवर निज निज आश्रम आ

श्रीरामने समुद्र पार किया

बांधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा । देखि कृपानिधिके मन भा
सेतु बंध ढिग चढ़ि रघुराई । चितै कृपालु सिन्धु-अधिक
देखन कहँ प्रभु करुणाकन्दा । प्रकट भये सब जलचर वृन्
चला कटक कछु बरनि न जाई । को कहि सक कपिदल विपु
सेन सहित उतरे रघुबीरा । कहि न जात कछु यूथप भी
सिन्धु पार, प्रभु डेरा कीन्हा । सकल कपिन कहं आयसु दी
खाहु जाइ फल मूल सुहाये । सुनत भालु कपि जहं तहं धा
सुनत श्रवण वारिध बंधाना । दशमुख बोलि उठा अकुला

बांधेउ जलनिधि-नीरनिधि, जलधि सिन्धु बारीश।
सत्य तोयनिधि पंकनिधि, उदधि पयोधि नदीश॥

व्याकुलता निज समुझि बहोरी । बिहँसि चला गृह करि भैति थोरी ॥

मन्दोदरीका रावणको समझाना

मन्दोदरी सुना प्रभु आये । कौतुकही पाथोधि बंधाये ॥
करण नाइ शिर अंचल रोपा । सुनहु वचन पिय परिहरि कोपा ॥

रामहिं सौंपहु जानकी, नाइ कमल-पद माथ ॥
सुत कहँ राज्य देहु वन, जाइ भजहु रघुनाथ ॥
अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कंपित गात ॥
नाथ भजहु रघुनाथपद, मम अहिवात न जात ॥

तब रावण मयसुता उठाई । कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तैं प्रिया मृषा भय माना । जग योधा को मोहिं समाना ॥
मन्दोदरी हृदय अस जाना । काल विवश उपजा अभिमाना ॥

प्रहस्तका समझाना

सभा जाइ मंत्रिन सों बूझा । करिय कवन विधि रिपुसन जूझा ॥

वचन सबनके श्रवण सुन, कह प्रहस्त कर जोरि ॥
नीतिविरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन मति अति थोरि ॥

वचन परम हित सुनत कठोरे । कहहिं सुनहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठव सुन नीती । सीतहिं देइ करिय पुनि प्रीती ॥

नारि पाइ फिर जाहिं जो, तौ न बढाइय रार ॥
नाहिं तो सन्मुख समर महं, नाथ करिय हठ मार ॥

यह मत जो मानहु प्रभु मोरा । उभय प्रकार सुयश जग तोरा ॥
सुतसन कह दशकंध रिसाई । अस मति तोहिं शठ कौन सिखाई ॥

सुनि पितु गिरा परुष अतिघोरा। चला भवन कहि वचन कठोर
हित मत तोहिं न लागत कैसे। काल विवश कहँ भेषज जैसे
संध्या समय जानि दशशीसा। भवन चला निरखत भुज बी
यहां सुवेल शैल रघुवीरा। उतरे सेन सहित अति भी
शैल शृंग एक सुन्दर देखी। अति उतंग सम सुभग विशे
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपा
प्रभु पाछे लक्ष्मण वीरासन। कटि निषंग कर बाण शरास

पूरब दिशा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक॥
कहेउ सबहिं देखहु शशिहिं, मृगपति सरिस अशंक॥

चन्द्रमाकी कालिमापर विचार

पूरब दिशि गिरि-गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रा
मत्त नाग तम कुम्भ विदारी। शशि केहरी गगन बनचा
बिथुरे नभ मुक्ताफल तारा। निशि सुन्दरी केर शृंगा
कह प्रभु शशिमहँ मेचकताई। कहहु कथा निज निज मति
शशि महँ प्रगट भूमिकी छाया। कह सुग्रीव सुनहु रघु
मारेहु राहु शशिहिं कह कोई। उर महँ परी श्यामता सो
कोउ कह जब विधि रतिमुख कीन्हा। सारभाग शशिकर हरि ली
छिद्र सो प्रकट इन्दु उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछा
कोउ कह गरल बंधु शशिकेरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसे
विष संयुत करनिकर पसारी। जारत विरहवन्त नर ना

कह मारुतसुत सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय दास॥
तव मूरति तेहि उर बसत, सोइ श्यामता भास॥

पवन तनयके वचन सुनि, विहँसे राम सुजान॥
दक्षिण दिशा विलोकि पुनि, वोले कृपानिधान॥

रामबाणकी करामात

देखु विभीषण दक्षिण आसा। घन घमण्ड दामिनी विलासा॥
मधुर मधुर गर्जत घन घोरा। होइ वृष्टि जनु उपल कठोरा॥
कहत विभीषण सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न वारिद माला॥
लंका शिखर रुचिर आगारा। तहँ दशकन्धर केर अखारा॥
छत्र मेघ डम्बर शिरधारी। सो जनु जलद घटा अति कारी॥
मन्दोदरी श्रवण ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव सरस सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसुकान देखि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बांण सन्धाना॥

क्षत्र मुकुट ताटंक सब, हते एक ही बान॥
सबके देखत महि गिरे, मर्म न काहू जान॥
यह कौतुक करि रामशर, प्रविशेउ आइ निषंग॥
रावण सभा सशंक सब, देखि महा रसभंग॥

रावण दीख सभा भय पाई। विहँसि वचन कह युक्ति बनाई॥
शिरौ गिरे सन्तत शुभ जाही। मुकुट गिरे कस अशकुन ताही॥
शयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल शिर नाई॥

मन्दोदरीका फिर समझाना

मन्दोदरी शोच उर बसेऊ। जबते श्रवणफूल महि खसेऊ॥
सजल नयन कह युग कर जोरी। सुनहु प्राणपति विनती मोरी॥

पद पाताल शीश अजधामा । अपरलोक अंगन्ह विश्रामा ॥
भ्रकुटि विलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ॥
जासु घ्राण अश्विनीकुमारा । निशि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवण दिशा दश वेद बखानो । मारुत श्वास निगम निज बानी ॥
अधर लोभ यम दशन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अम्बुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोमावली अष्टदश भारा । अस्थि शैल सरिता नसजारा ॥
उदर उदधि अधगो यातना । जगमय प्रभुकी बहुत कलपना ॥
अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान ॥
मनुज वास चर अचर मय, रूप राशि भगवान ॥
अस विचार सुनु प्राणपति, प्रभु सन वैर विहाइ ॥
प्रीति करहु रघुवीर पद, मम अहिवात न जाइ ॥
विहँसा नारि वचन सुनि काना । अहो मोह महिमा बलवाना ॥
जानेउ प्रिया तोरि चतुराई । यहि मिसि कहेउ मोरि प्रभुताई ॥
तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि । समुझत सुखद सुनत भयमोचनि ॥
मन्दोदरि मनमंह अस ठयऊ । पियहिं कालवश मतिभ्रम भयऊ ॥
बहु विधि जल्पेसि सकल निशि, प्रात भये दशकन्ध ॥
सहज अशंक सो लंकपति, सभा गयो मद अन्ध ॥
फूलै फलै न बेत, यदपि सुधा बर्षहिं जलद ॥
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥
इहां प्रात जागे रघुराई । पूछा मत सब सचिव बुलाई ॥
कहहु वेगि का करिय उपाई । जाम्बवन्त कह पद शिर नाई ॥

मंत्र कहव निज मति अनुसारा। दूत पठाइय बालिकुमारा॥
नीक मंत्र सबके मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥

अंगदको लङ्का भेजना

बालितनय बुधिबल गुणधामा। लंका जाहु तात मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊं। परम चतुर मैं जानत अहऊं॥
बन्दि चरण उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहिं शिर नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज अशंका। रणबांकुरा वालिसुत बंका॥
पुर पैठत रावण कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गइ भेटा॥
भयउ कोलाहल नगरमंझारी। आवा कपि लंका जो जारी॥
बिन पूंछे मगु देहिं बताई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥

गयो सभा दरबार रिपु, सुमिरि रामपद-कंज॥
सिंह ठवनि इत उत चितै, धीर वीर बलपुंज॥

तुरत निशाचर एक पठावा। समाचार रावणहिं सुनावा॥
सुनत बचन बोलेउ दशशीशा। आनहु बोलि कहां कर कीशा॥
अंगद दीख दशानन वैसा। सहितप्राण कज्जल गिरि जैसा॥
उठी सभा सब कपि कहं देषी। रावण उर भा क्रोध बिशेषी॥
कह दशकन्ध कवन तैं बन्दर। मैं रघुवीर दूत दशकन्धर॥
मम जनकहिं तोहिं रही मिताई। तव हित कारन आयहुं भाई॥
नृप-अभिमान मोहवश किम्बा। हरि आनेहु सीता जगदम्बा॥
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा। सब अपराध क्षमहिं प्रभु तोरा॥
दशन गहहु तृण कण्ठ कुठारी। पुरजन संग सहित निज नारी॥

सादर जनकसुता करि आगे । इह विधि चलहु सकल भय त्यागे॥
प्रणतपाल रघुवंशमणि, त्राहि त्राहि अब मोहिं॥
सुनतहिं आरत बचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं॥
कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नाते मानिये मिताई॥
अंगद नाम वालि कर बेटा । तासों कबहुं भई तोहिं भेंटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना । रहा बालि वानर मैं जाना॥
अंगद तुही वालि कर बालक । उपजेहु वंश अनल कुलघालक॥
गर्भ न खसेउ वृथा तुम जाये । निजमुख तापस दूत कहाये॥
हम कुलघालक सत्य तुम, कुलपालक दशशीश॥
अन्धउ वधिर न कहहिं अस, श्रवण नयन तव वीस॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी । कहत दशानन नयन तरेरी॥
खल तव वचन कठिन मै सहऊं । नीति धर्म सब जानत अहऊं॥
कह कपि धर्मशीलता तोरी । हमहुं सुनी कृत परतिय चोरी॥
जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि, सठ विलोकु मम बाहु॥
लोकपाल वल विपुल शशि, ग्रसन हेतु जिमि राहु॥
पुनि नभ सर ममकर निकर, कर कमलन पर बास॥
शोभित भयो मराल इव, शम्भु सहित कैलास॥
तुम्हरे कटक माहिं सुनु अंगद । मोसन भिरहिं कौन योधा बद॥
तव प्रभु नारि विरह वलहीना । अनुज तासु दुख दुखित मलीना॥
तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जाम्बवन्त मंत्री अति बूढ़ा । सो किमि होइ समर आरूढ़ा॥

सिल्प कर्म जानत नल नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगर जेहिं जारा । सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥

सत्य कहसि दशकण्ठ तैं, मोहिं न सुनि कछु कोह ॥
कोउ न हमरे कटक अस, तुमसन लरत जो सोह ॥
प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति अस आहि ॥
जो मृगपति बध मेडुकहिं, भलो कहै को ताहि ॥
यद्यपि लघुता राम कहँ, तोहिं बधे बड़ दोष ॥
तदपि कठिन दशकण्ठ सुन, छत्रि जाति कर रोष ॥
वक्र उक्ति धनु बचनशर, हृदय दहेऊ रिपुकीश ॥
प्रति उत्तर संडसी मनहुं, काढ़त भट दशशीश ॥
हंसि बोलेउ दशमौलि तब, कपिकर बड़ गुण एक ॥
जो प्रतिपालै तासु हित, करै उपाय अनेक ॥

बालि विमलयशःभाजन जानी । हतौं न तोहिं अधम अभिमानी ॥

तेहिं रावण कहँ लघु कहेसि, नर कर करसि बखान ॥
रे कपि बर्बर खर्व खल, अब जाना तव ज्ञान ॥

सुनि अंगद सकोप कह बानी । बोलु संभारि अधम अभिमानी ॥
राम मनुज कसरे शठ बंगा । धन्वी काम नदी पुनि गंगा ॥
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा । अन्नदान पुनि रस पीयूषा ॥
वैनतेय खग अहि सहसानन । चिन्तामणि की उपल दशानन ॥
सुन मतिमन्द लोक बैकुण्ठा । लाभ कि रघुपति भक्ति अकुण्ठा ॥

सेन सहित तव मान मथि, वन उजारि पुरजारि ॥
कस रे शठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि ॥

जो पै समर सुभट तव नाथा । पुनि पुनि कहसि जासु गुणगाथा
तौ वसीठ पठवत केहि काजा । रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा

शूर कवन रावण सरिस, निज कर काटे शीश ॥
हुतेउ अनल महं बार बहु, हर्षित साखि गिरीश ॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावण तोहिं समान कोउ नाहीं
लाजवन्त तव सहज स्वभाऊ । निजगुण निजमुख कहसि न काऊ
सुन मतिमन्द देह अब पूरा । काटे शीश न होइय शूरा
वाजीगर कहं कहिय न चोरा । काटै निज कर सकल शरीरा

जरहिं पतंग विमोहवश, भार वहहिं खरवृन्द ॥
ते नहिं शूर कहावहीं, समुझ देखु मतिमन्द ॥
तोहिं पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउं ॥
मन्दोदरी समेत शठ, जनक सुतहिं लै जाउं ॥

जो अस करउं न तदपि बड़ाई । मुयहि वधे कछु नहिं मनुसाई
कौल कामवश कृपण विमूढ़ा । अतिदरिद्र अवशी अति बूढ़ा
सदा रोगवश सन्तत क्रोधी । रामविमुख श्रुति-सन्त-विरोधी
निज तनु-पोषक निर्दय-खानी । जीवत शव-सम चौदह प्रानी
अस विचारि खल वधौं न तोहीं । अब जनि रिस उपजावसि मोहीं
सुनि सकोप कह निशिचरनाथा । अधर दशन गहि मींजत हाथा
रे कपि पोच मरण अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी

कटु जल्पसि जड़ कपिवल जाके। बुधिबले तेज प्रताप न ताके॥

अगुण अमान विचारि तेहि, दीन पिता वनवास॥
सो दुख अरु युवतीविरह, पुनि निशिदिन मम त्रास॥

जब तेहिं कीन्ह रामको निन्दा। क्रोधवन्त तब भयउ कपिन्दा॥
हरि हर निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गो घात समाना॥
कटकटाइ कपिकुंजर भारी। दोउ भुजदण्ड तमकि महिमारी॥
डोलत धरणि सभासद खसे। चले भागि भय मारुत ग्रसे॥
गिरत दशानन उठेउ संभारी। भूतल परेऊ मुकुट षटचारी॥
कछु निज कर लै शिरन संभारे। कछु अंगद प्रभु पास पवांरे॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन अब लागे॥
की रावण करि कोप चलाये। कुलिश चारि आवत अति धाये॥
कह प्रभु विहंसि जनि हृदय डराहू। लूक न अशनि केतु नहिं राहू॥
ये किरीट दशकन्धर केरे। आवत बालि-तनयके प्रेरे॥

कूद गहे कर पवनसुत, आनि धरे प्रभुपास॥
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकरसरिस प्रकास॥

यहां कहत दशकन्ध रिसाई। धरि मारहु कपि भागि न जाई॥
पुनि सकोप बोलेउ युवराजा। गाल बजावत तोहिं नहिं लाजा॥
मैं तव दशन तोरिबे लायक। आयसु पै न दीन रघुनायक॥
अस रिस होति दशौं मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥

अंगदका पैर रोपना

राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा। सभा मांझ प्रण करि पद रोपा॥

जो मम चरण सकसि शठ टारी । फिरहिं राम सीता मैं हारी ॥
इन्द्रजीत आदिक बलशाना । हर्षि उठे जहँ तहँ भटनाना ॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरै बैठहिं शिरनाई ॥
पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥

भूमि न छांड़ै कपिचरण, देखत रिपु-मद भाग ॥
कोटि बिघ्न जिमि सन्त कहं, तदपि नीति नहिं त्याग ॥

कपिबल देखि सकल हिय हारे । उठा आप कपिके परचारे ॥
गहत चरण कह बालिकुमारा । ममपद गहे न तोर उबारा ॥
गहसि न रामचरण शठ जाई । सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
भयो तेजहत श्री सब गई । मध्य दिवस जिमि शशि सोहई ॥
सिंहासन बैठा शिर नाई । मानहुं सम्पति सकल गंवाई ॥
पुनि कपि कही नीति बिधिनाना । मानत नाहिं काल नियराना ॥
रिपु मदमथि प्रभु सुयश सुनाये । असकहि चले बालि नृपजाये ॥
यातुधान अंगद बल देखी । भे व्याकुल अति हृदय विशेषी ॥

रिपुबल धर्षि हर्षि हिय, बालितनय बल पुंज ॥
सजल नयन तनु पुलक अति, गहे रामपद कंज ॥

मन्दोदरीका फिर समझाना

सांझ जानि दशकण्ठ तब, भवन गयउ बिलखाइ ॥
मन्दोदरी अनेक बिधि, बहुरि कहा समुझाइ ॥

कन्त समुझि मन तजहु कुमतिही । सोह न समर तुमहिं रघुपतिही ॥
अहह कन्त कृत राम बिरोधा । काल विवश मन होइ न बोधा ॥

कालदण्ड गहि काहु न मारा। हरै धर्म्म वल वुद्धि विचारा ॥
निकट काल जेहि आवत साँई। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहिं नांई ॥

दोइ सुत मारेउ पुर दहेउ, अजहुं पीय सिय देहु ॥
कृपासिन्धु रघुवीर भजि, नाथ विमलयश लेहु ॥

नारिवचन सुनि विशिष समाना। सभा गयो उठि होत विहाना ॥
बैठा जाइ सिंहासन फूली। अति अभिमान त्रास सव भूली ॥
वहां राम अंगदहिं वुलावा। आइ चरण पंकज शिरनावा ॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले विहंसि कृपालु खरारी ॥
रावण यातुधान-कुल-टीका। भुजबल अतुल जासु जगलीका ॥
तासु मुकुट तुम चारि चलाये। कहहु तात कवनी विधि पाये ॥
कहा वालिसुत सुनहु खरारी। मुकुट न होइँ भूप गुण चारी ॥
साम दाम अरु दण्ड विभेदा। नृप उर वसहिं नाथ कह वेदा ॥
नीति धर्म्मके चरण सुहाये। अस जिय जानि नाथ पहं आये ॥

धर्महीन प्रभुपद विमुख, कालविवश दशशीश ॥
आये गुण तजि रावणहिं, सुनहुं कोशलाधीश ॥
परम चतुरता श्रवण सुनि, विहंसे राम उदार।
समाचार तव सब कहेउ, गढ़के वालिकुमार ॥

युद्धकी व्यवस्था

रिपुके समाचार जब पाये। राम सचिव तव निकट वुलाये ॥

लंका बंका चारि दुवारा । केहि विधि लागिय कहहु बिचा[illegible]
तब कपीश ऋक्षेश विभीषण । सुमिरि हृदय दिनकर-कुल-भू[illegible]
करि बिचार तिन मंत्र दृढ़ावा । चारि अनी कपि कटक ब[illegible]
यथायोग्य सेनापति कीन्हे । यूँथप सकल बोलि तिन [illegible]

लङ्कापर राम दलकी चढ़ाई

जयति राम भ्राता सहित, जय कपीश सुग्रीव ॥
गर्जें केहरिनाद कपि, भालु महाबल सीव ॥

लंका भयउ कोलाहल भारी । सुनेउ दशानन अतिहि हं[illegible]
देखउ बनरन्ह केरि ढिठाई । बिहंसि निशाचर सेन बु[illegible]
आये कीश कालके प्रेरे । क्षुधावन्त रजनीचर [illegible]
सुभट सकल चारिहुं दिशि जाहू । धरि धरि भालु कीश सब [illegible]

नानायुध शर चाप धरि, यातुधान बलवीर ॥
कोट कंगूरन चढ़ि गये, कोटि कोटि रणधीर ॥

बाजहिं ढोल निशान जुझाऊ । सुनि सुनि सुभटनके मन [illegible]
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा । सुनि कादर उर होइं [illegible]
देखि न जाइं कपिनके ठट्टा । अति विशाल तनु भालु सु[illegible]
धावहिं गनहिं न औघट घाटा । पर्वत फोरि करहिं गहि [illegible]
कटकटाइ कोटिन भट गर्जहिं । दशनन ओठ काटि अति [illegible]
उत रावण इत राम दोहाई । जयति जयति कहि परी[illegible]
निशिचर शिखर समूह ढहावहिं । कूदि धरहिं कपि फेरि चला[illegible]
रामप्रताप प्रबल कपि यूथा । मर्दहिं निशिचर-निकर-[illegible]

रावणका क्रोध

जदल बिचल सुना जब काना । फिरे सुभट लंकेश रिसाना ॥
ो रणबिमुख फिरा मैं जाना । तेहि मारिहौं कराल कृपाना ॥
र्बस खाइ भोग करि नाना । समर भूमि भा दुर्लभ प्राना ॥
ग्र वचन सुनि सकल डराने । फिरे क्रोध करि सुभट लजाने ॥
न्मुख मरण वीरकी शोभा । तब तिन तजा प्राणकर लोभा ॥

बहु आयुध धरि सुभट सब, भिरहिं प्रचारि प्रचारि ॥
कीन्हे व्याकुल भालु कपि, परिघ प्रचण्डनि मारि ॥

य आतुर कपि भागन लागे । यद्यपि उमा जीतिहैं आगे ॥
घनाद तहं करै लराई । टूट न द्वार परम कठिनाई ॥
पवनतनय मन भा अति क्रोधा । गर्जेउ प्रलय काल सम योधा ॥
दि लंक गढ़ ऊपर आवा । गहि गिरि मेघनाद पर धावा ॥
जेउ रथ सारथी निपाता । तासु हृदय महँ मारेउ लाता ॥
सर सूत विकल तेहि जाना । स्यंदन घालि तुरत घर आना ॥

अंगद सुनेउ कि पवनसुत, गढ़पर गयउ अकेल ॥
समर-बांकुरा बालिसुत, तर्कि चलेउ करि खेल ॥

नि कर गहि कंचनके खम्भा । करन लगे उतपात अरम्भा ॥
दि परे रिपु-कटक मंझारी । लागे मर्दन भुजबल भारी ॥

एक एक सन मर्दि करि, तोरि चलावहिं मुंड ॥
रावण आगे परहिं ते, जनु फूटहिं दधि-कुंड ॥

महा-महा मुखिया जे पावहिं । ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥

कहहिं विभीषण तिनके नामा । देहिं राम तिनकहँ निजधामा ॥
खल मनुजाद जो आमिष भोगी । पावहिं गति जो याचत योगी ॥
अंगद अरु हनुमंत प्रवेशा । कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेशा ॥

भुजबल रिपुदल दलि मलेउ, देखि दिवसकर अन्त ॥
कूदे युगल प्रयास बिनु, आये जहं भगवन्त ॥

प्रभुपद-कमल-शीश तिन नाये । देखि सुभट रघुपति मन भाये ॥
गये जानि अंगद हनुमाना । फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥
यातुधान प्रदोष बल पाई । धाये करि दशशीश दुहाई ॥
निशिचर-अनी देखि कपि फिरे । कटकटाइ जहं तहं भट भिरे ॥
दोउ दल भिरहिं प्रचारि प्रचारी । लरहिं सुभट नहिं मानहिं हारी ॥
भयउ निमिषमहं अति अंधियारा । काहु न सूझै अपन पराया ॥
मारु खाहु सब करहिं पुकारा । वृष्टि होइ रुधिरोपल क्षारा ॥

देखि निविडतम दशहुं दिशि, कपि दल भयउ खभार ॥
एकहि एक न देख जब, जहं तहं करहिं पुकार ॥

पुनि कृपालु हंसि चाप चढ़ावा । पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकाश कतहुं तम नाहीं । ज्ञान उदय जिमि संशय जाहीं ॥
हनूमान अंगद रण गाजे । हांक सुनत रजनीचर भाजे ॥
भागत भट पटकहिं धरि धरनी । करहिं भालु कपि अद्भुत करनी ॥
गहि पद डारहि सागर माहीं । मकर उरग झख धरि धरि खाहीं ॥

कछु घायल कछु रन परे, कछु गढ़ चले पराइ ॥
गर्जे मर्कट भालु भट, रिपु दल बल बिचलाइ ॥

निशा जानि कपि चारिउ अनी । आये सब जहं कोशलधनी ॥
रामकृपा करि चितवा जबहीं । भये विगतश्रम बानर तबहीं ॥
इहां दशानन सचिव हंकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥
आधा कटक कपिन संहारा । कहहु बेगि का करिय विचारा ॥
माल्यवंत एक जरठ निशाचर । रावण-मातु-पिता मंत्रीवर ॥
बोला बचन नीति अति पावन । तात सुनहु कछु मोर सिखावन ॥
परिहरि वैर देहु वैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ताके बचन बाण सम लागे । करिया मुख करि जाहु अभागे ॥
बूढ़ भयसि नतु मरतेउ तोहीं । अब जनि वदन देखावसि मोहीं ॥
तेइ अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत यहि कृपानिधाना ॥
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखियहु मोरा । करिहौं बहुत कहतहौं थोरा ॥

मेघनाद सुनि श्रवण अस, गढ़ पुनि छेंका आइ ॥
उतरि दुर्गते वीरवर, सन्मुख चला बजाइ ॥

शर समूह सो छांड़ै लागा । जनु सपक्ष धावैं बहु नागा ॥
भागे भय-ब्याकुल कपिऋच्छा । बिसरी सबहि युद्धकी इच्छा ॥

मारेसि दश दश विशिष उर, परे भूमि सब वीर ॥
सिंहनाद करि गर्ज तब, मेघनाद रणधीर ॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला । क्रोधवन्त धावा जनु काला ॥
महा महीधर तमकि उपारा । अति रिस मेघनाद पर डारा ॥

आवत देखि गयउ नभ सोई । रथ सारथी तुरंग सब खोई ॥
बार बार प्रचार हनुमाना । निकट न आव मर्म्म सो जाना ॥
राम समीप गयो घननादा । नानाभांति कहत दुर्वादा ॥
अस्त्र शस्त्र बहु आयुध डारे । कौतुकही प्रभु काटि निवारे ॥

जासु प्रबल माया विवश, शिव विरंचि बड़ छोट ॥
ताहि देखावत रजनिचर, निज माया मति खोट ॥

अकुलाने कपि माया देखे । सब कर मरण बना इहि लेखे ॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने । भये सभीत सकल कपि जाने ॥
एकहि बाण काटि सब माया । जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ॥
कृपादृष्टि कपि भालु विलोके । भये प्रबल रण रहहिं न रोके ॥

आयसु मांगेउ राम पहं, अंगदादि कपि साथ ॥
लक्ष्मण चले सकोप तब, बाण सरासन हाथ ॥

उहां दशानन सुभट पठाये । नाना अस्त्र शस्त्र गहि धाये ॥
भिरे सकल जोरी सन जोरी । इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ॥

लक्ष्मणके शक्ति लगना

लक्ष्मण मेघनाद दोउ योधा । भिरहिं परस्परकरि अति क्रोधा ॥
एकहि एक सकै नहिं जीती । निशिचर छल बल करै अनीती ॥
क्रोधवन्त तब भयउ अनन्ता । भंजेउ रथ सारथी तुरन्ता ॥
नानाविध प्रहार करि शेषा । राक्षस भयउ प्राण अवशेषा ॥
रावणसुत निज मन अनुमाना । संकट भयेउ हरिहिं मम प्राना ॥

वीर-घातिनी छांडेसि सांगी । तेजपुंज लक्ष्मण उर लागी ॥
मूर्छा भई शक्तिके लागे । तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥
मेघनाद सम कोटि सत, योद्धा रहे उठाय ॥
जगदाधार अनन्त सो, उठहिं न चला खिसाय ॥
संध्या भई फिरीं दोउ ऐनी । लगे संभारन निज निज सैनी ॥
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर । लक्ष्मण कहं पूछा करुणाकर ॥
तब लगि लै आयो हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥

हनुमान पहाड़ उठा लाये

जाम्बवन्त कह वैद्य सुषेना । लंका रहै पठइय कोउ लैना ॥
धरि लघु रूप गयो हनुमन्ता । आनेउ भवन समेत तुरन्ता ॥
रघुपति-चरण सरोज शिर, नायउ आइ सुषेन ॥
कहा नामगिरि औषधी, जाहु पवनसुत लेन ॥
देखा शैल न औषधि चीन्हा । सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निशि नभ धावत भयऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ॥

हनुमानसे भरतकी बातचीत

देखा भरत विशाल अति, निशिचर मन अनुमानि ॥
विनु फर ◌ायक मारेऊ, चाप श्रवण लगि तानि ॥
परेउ मूर्छि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय वचन भरत उठि धाये । कपि समीप अति आतुर आये ॥
विकल विलोकि कीश उरलावा । जागा नहिं बहु भांति जगावा ॥
जो मोरे मन वच अरु काया । प्रीति राम-पद-कमल अमाया ॥

तौ कपि होउ विगत-श्रम-शूला । जो मोपर रघुपति अनुकूला ॥
बचन सुनत उठि वैठ कपीशा । कहि जयजयति कोशलाधीशा ॥

लीन्ह कपिहिं उर लाय, पुलक गात लोचन सजल ॥
प्रीति न हृदय समाय, सुमिरि राम रघुकुल-तिलक ॥

तात कुशल कहु सुखनिधानकी । सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥
कपि सब चरित समास बखाने । भये दुखित मन महं पछिताने ॥
तात गहरु होइहैं तोहिं जाता । काज नसाइहि होत प्रभाता ॥
चढ़ु मम सायक शैल समेता । पठवौं तोहिं जहं कृपानिकेता ॥
तव प्रताप उर राखि गुसांई । जैहौं नाथ वाणकी नाईं ॥
हर्षि भरत तब आयसु दीन्हा । पद सिर नाय गमन कपि कीन्हा ॥

रामका विलाप

उहां राम लछमनहिं निहारी । बोले वचन मनुज अनुहारी ॥
अर्द्ध रात्रि गइ कपि नहिं आवा । राम उठाइ अनुज उर लावा ॥
सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ । बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
ममहित लागि तजेउ पितु माता । सहेउ विपिन हिम आतप वाता ॥
सो अनुराग कहां अब भाई ? उठउ न सुनि मम बच विकलाई ॥
जो जनतेउं बन बन्धु विछोहू । पिता वचन नहिं मनतेउं ओहू ॥
सुत वित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस विचारि जिय जागहु ताता । मिलहिं न बहुरि सहोदर भ्राता ॥
यथा पंख बिनु खगपति दीना । मनि बिनु फणि करिवर कर हीना ॥
तस मम जिवन बंधु बित तोहीं । जो जड़ दैव जिआवै मोहीं ॥

जैहौं अवध कवन मुंह लाई । नारिहेतु प्रिय बन्धु गंवाई ॥
बरु अपयश सहतेउं जगमाहीं । नारि हानि विशेषक्षति नाहीं ॥
अब अवलोकि शोक यह तोरा । सहै कठोर निठुर मन मोरा ॥
निज जननीके एक कुमारा । तात तासु तुम प्रान अधारा ॥
सौंपेउ मोहिं तुमहिं गहि पानी । सब विधि सुखद परमहित जानी ॥
उतर ताहि देहौं का जाई । उठि किन मोहिं सिखावहु भाई ॥
बहुविधि शोचत शोच-विमोचन । श्रवत सलिल राजिव दल लोचन ॥
उमा अखण्ड राम रघुराई । नरगति भाव कृपालु दिखाई ॥

प्रभु बिलाप सुनि कान, बिकल भये वानरनिकर ।
आइ गये हनुमान, जिमि करुना महं वीर रस ॥

हर्षि राम भेंटेउ हनुमाना । अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना ॥
तुरत वैद्य तब कीन उंपाई । उठि बैठे लक्ष्मण हर्षाई ॥
हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता । हर्षे सकल भालु कपि व्राता ॥
पुनि कपि वैद्य तहां पहुंचावा । जेहि विधि तबहिं ताहि लै आवा ॥
यह वृतान्त दशानन सुनेऊ । अति विषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ॥

कुम्भकरणका मैदानमें आना

व्याकुल कुम्भकर्ण पहं गयऊ । करि बहु जतन जगावत भयऊ ॥
जागा निशिचर देखिय कैसा । मानहुं काल देह धरि बैसा ॥
कुम्भकर्ण पूंछा सुनु भाई । काहे तव मुख रहा सुखाई ॥
कथा कही सब तेइं अभिमानी । जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥
महिष खाइ करि मदिरा पाना । गर्जेउ बज्रघात अनुमाना ॥

कुम्भकर्ण दुर्मद रणरंगा । चला दुर्ग तजि सेन न संग॥
नाथ भूधराकार शरीरा । कुम्भकरण आवत रणधीरा॥
इतना कपिन सुना जब काना । किलकिलाय धाये बलवाना॥
लिये उपारि विटप अरु भूधर । कटकटाइ डारे तेहि ऊपर॥
कोटि कोटि गिरि शिखर प्रहारा । करहिं भालु कपि एकहिं बारा॥
गिरै न मुरै टरे नहिं टारे । जिमि गज अर्कफलनके मारे॥

अंगदादि कपि मूर्छित, करि समेत सुग्रीव॥
काँख दाबि कपिराज कहं चला अमित बलसीव॥

मूर्च्छा गई मरुतसुत जागा । सुग्रीवहिं तब खोजन लागा॥
कपिराजहुकर मूर्च्छा बीती । निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥
कुम्भकर्ण कपि सेन बिडारी । सुनि धाये रजनीचर भारी॥
देखी राम विकल कटकाई । रिपु अनीक नाना विधि आई॥

सुनहु विभीषण लषण सह, सकल संभारहु सैन।
मैं देखौं खलबल दलहिं, बोले राजिवनैन॥

कुम्भकर्णका बध

कर सारंग विशिष कटि भाथा । अरिदल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टंकोरा । रिपुदल बधिर भयहु सुनि शोरा॥

क्षण महँ प्रभुके सायकन, काटे विकट पिशाच॥
पुनि रघुपतिके त्रोण महँ, प्रविसे सब नाराच॥

कुम्भकर्ण मन दीख निचारी । क्षण महँ हते निशाचर भारी॥
भयउ क्रोध दारुण बलबीरा । करि मृगनायक नाद गंभीरा॥

करि चिकार मुख घोर अति, धावा बदन पसार ॥
गगन सकल सुर त्रास अति, हाहाकार पुकार ॥

सभय देव करुणानिधि जाने । श्रवण प्रयंत शरासन ताने ॥
विशिखनिकर निशिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥
शरन भरा मुख सन्मुख धावा । कालत्रोण जनु तनु धरि आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीव्र शर लीन्हा । धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥
सो सिर परा दशानन आगे । विकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागे ॥
धरनि धसै धर धाव प्रचण्डा । तब प्रभु काटि कीन्ह युग खण्डा ॥
दिनके अन्त फिरी दोउ अनी । समर भयउ सुभटन श्रम घनी ॥
रामकृपा कपि दल बल बाढ़ा । जिमि तृन पाइ अनल अति डाढ़ा ॥
खोजहिं निशिचर दिन अरु राती। निजमुख कहे सुकृत जेहि भाँती ॥
बहु बिलाप दशकन्धर करही । पुनि पुनि बन्धु शीश-उर धरही ॥

मेघनादका बध

मेघनाद माया विरचि, रथ चढ़ि गयउ अकास ॥
गर्जेउ प्रलयपयोद जिमि, भा कपिदल अति त्रास ॥

शक्ति शूल शर परिघ कृपाना । अस्त्र शस्त्र कुलिशायुध नाना ॥
डारे. परशु प्रचण्ड पखाना । लागा वृष्टि करै बहु बाना ॥
रहे दशहु दिशि शायक छाई । मानहु मघा मेघ झरि लाई ॥
मारुतसुत अंगद नल नीला । कीन्हेसि विकल सकल बलशीला ॥
पुनि लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण । शरन मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सन जूझन लागा । छांडत शर होइ लागहिं नागा ॥

व्यालफांस वश भये खरारी । स्ववश अनन्त एक अविकारी
नटइव चरित करत विधिनाना । सदा स्वतंत्र राम भगवाना
व्याकुल कटक कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रकट कहत दुर्वादा
जाम्बवन्त कह खल रहु ठाढा । सुनिकै ताहि क्रोध अति बाढा
बूढ़ जानि शठ छांडेउ तोहीं । लागेसि अधम प्रचारन मोहीं
अस कह ताहि त्रिशूल चलावा। जाम्बवन्त सो कर गहि धावा
मारेउ मेघनादकी छाती । परा धरनि घुमित सुरघाती
पुनि रिसाइ गहि चरन फिरावा । महि पछारि निजबलहिं दिखावा
वरप्रसाद सो मरहि न मारा । तब पद गहि लंका पर डारा
इहां देवऋषि गरुण पठाये । राम समीप सपदि चलि आये

पन्नागारि खाये सकल, छिन महँ व्याल बरूथ ॥
भई विगत माया तुरत, हर्षे वानर यूथ ॥
गहि गिरि पादप उपल बहु, धाये कीश रिसाइ ॥
चले तमीचर विकल अति, गढ़ पर चले पराइ ॥

मेघनाद की मूर्छा जागी । पितहिं विलोकि लाजअति लागी
लै त्रिशूल धावा कपि भागे । आवा रामअनुजके आगे
आवत परम क्रोध करि मारा । गर्जि घोर रव बारहिं बारा
कोपि मरुतसुत अंगद धाये । हति त्रिशूल उर धरनि गिराये
प्रभु पर छांड़ेसि शूल प्रचण्डा । शरहति कृत अनन्तयुग खण्डा
उठि बहोरि मारुत युवराजा । हतेउ कोपि तिहि छावन बाजा
फिरे वीर रिपु मरै न मारा । पुनि धावा करि घोर चिकारा

धावत देखि वज्र जनु काला। लक्ष्मण छांड़े विशिख कराला॥
आवत देखि वज्र सम वाना। तुरत भयो खल अन्तर्धाना॥
विविध वेषधरि करे लराई। कबहुंक प्रकट कबहुं दुरि जाई॥
लक्ष्मण मन अस मंत्र दृढ़ावा। इहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा॥
छांड़ा बान तासु उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा॥

राम अनुज कहि राम कहि, अस कहि छांड़ेसि प्रान॥
धन्य शक्रजित मातु तव, कहि अंगद हनुमान॥

बिनु प्रयास हनुमान उठावा। लंकाद्वार राखि तेहि आवा॥
तासु मरन सुनि सुर गन्धर्वा। चढ़ि विमान आये नभ सर्वा॥
बरषि सुमन दुन्दुभी बजावहिं। श्री रघुवीर-विमलयश गावहिं॥
जय अनन्त जगदाधारा। प्रभु तुम सब देवन निस्तारा॥
सुत वध सुना दशानन जबहीं। मूर्छित भयउ परेउ महि तबहीं॥
मंदोदरी रुदन करि भारी। उर ताड़त बहु भाँति पुकारी॥

तब दशकण्ठ अनेक विधि, समुझाई सब नारि॥
नश्वर रूप प्रपंच सब, देखहु हृदय विचारि॥

तिनहिं ज्ञान उपदेशत रावन। आपन मंद कथा अति पावन॥
पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥
तासु क्रिया करि निशिचरनाहा। भयउ शोचवश अति उर दाहा॥
सचिव आइ सब लगे सिखावन। बादि विषाद करिय जिय रावन॥
सुत-वित-नारि-विविध सुख कैसे। उपजहिं घटा जाहिं उड़ि जैसे॥
तड़ित दमक देखिय घनमाहीं। रहहिं न थिर सो बहुरि छिपाहीं॥

इह जिय जानि सुनहु दसभाला। बचहि न कोउ जग आये काला॥
सुभट बोलाय दशानन बोला। रण-सन्मुख जाकर मन डोला॥
सो अबहीं बरु जाहु पराई। रणसन्मुख भागे न भलाई॥
चली निशाचर अनी अपारा। चतुरंगिनी चमू बहु धारा॥
विविध भांति वाहन रथ याना। विपुल वरण पताक ध्वज नाना॥
उठी रेणु रवि गयउ छिपाई। पवन थकित वसुधा अकुलाई॥
पणव निशान घोर रव बाजहिं। महाप्रलयके जनु घन गाजहिं॥
भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग शूर सुखदाई॥
कहै दशानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन कर ठट्टा॥
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सन्मुख सैन चलाई॥
यहि सुधि सकल कपिन जब पाई। धाये करि रघुवीरदुहाई॥

विजयके साधन

रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति उर भा संदेहा। वन्दि चरण कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नाहीं पदत्राना। केहि विधि जीतब रिपु बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना॥
शौरज धीर जाहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बलवि-वेक-दम-परहित घोरे। क्षमा-दया-समता रजु जोरे॥
ईश-भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म्म सन्तोष कृपाना॥
दान परशु बुधि शक्ति प्रचण्डा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा॥
संयम नियम शिलीमुख नाना। अमल अचल मन त्रोण समाना॥

कवच अभेद विप्रपद-पूजा। इहि सम विजय-उपाय न दूजा ॥
सखा धर्म्म-मय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुं रिपु ताके ॥

महाघोर संसार रिपु, जीति सकै सो वीर ॥
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥
सुनत विभीषण प्रभु-वचन, हर्षि गहे पदकंज ॥
इह विधि मोहिं उपदेश किय, रामकृपा सुख-पुंज ॥

धावा परम क्रोध दशकन्धर। सन्मुख चले हूह करि बन्दर ॥
गहि गिरि पादप उपल पहारा। डारहिं तेहिपर एकहि बारा ॥
लागहिं शैल वज्र तनु तासू। खण्ड खण्ड होइ फूटहिं आसू ॥
चले पराय भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥
पाहि पाहि रघुबीर गुसाईं। यह खल आव कालकी नाईं ॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दशहु चाप सायक सन्धाने ॥

विचलत देखा कपि कटक, कटि निषंग धनु हाथ ॥
लछिमन चले सकोप तब, नाइ रामपद माथ ॥

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहिं बिलोकु तोर मैं कालू ॥
खोजत रहेउं तोहिं सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावौं छाती ॥
कहि अस छांड़ेसि बाण प्रचण्डा। लछिमन किये तुरत शतखण्डा ॥
कोटिन आयुध रावण डारे। तिल प्रमाण प्रभु काटि निवारे ॥
पुनि निज बाणन कीन्ह प्रहारा। स्यन्दन भंजि सारथी मारा ॥
शत शत शर मारे दशभाला। गिरिशृंगन जनु प्रविशहिं ब्याला ॥

पुनि शत शर मारे उर माहीं । परेउ अवनि तनु सुधि कछु नाहीं
उठा प्रबल पुनि मूर्छा जागी । छांड़ेसि ब्रह्मदत्त जो सांगी

जो ब्रह्मदत्त प्रचण्ड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
परेयो विकल वीर उठाव दशमुख अतुलबल महिमा रही
ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक शिर जिमि रजकनी
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी

देखत धावा पवनसुत, बोलत वचन कठोर॥
आवत तेहि उर महँ हनेउ, मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

इहिके बीच निशाचर अनी । कसमसाति आई अति घनी
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा । प्रलयकालके जिमि घनघट्टा
शक्ति शूल तलवार चमकहिं । जनु दशदिशि दामिनी दमकहिं
गज रथ तुरंग चिकार कठोरा । गर्जत मनहुं बलाहक घोरा
कपिलंगूर विपुल नभ छाये । मनहुं इन्द्रधनु उदय सुहाये
उठी रेनु मानहुं जलधारा । बान वुन्द भइ वृष्टि अपारा
दुहुं दिशि पर्वत करत प्रहारा । बज्रपात जनु बारहिं बारा
रघुपति कोपि बान झरि लाई । घायल भे निशिचर समुदाई
लागत बाण वीर चिक्करहीं । घुमि घुमि अगणित महि परहीं
स्रवहिं शैल जनु निर्झर बारी । शोणित संग कादर भय भारी

राम रावण युद्ध

वीर परे जनु तीरतरु, मज्जा बह जनु फैन ॥
कादर देखत डरहिं जिय, सुभटनके मन चैन ॥

नहिं भूत पिसाच वेताला । केलि करहिं योगिनी कराला ॥
क कन्ध लै भुजा उड़ाहीं । एकते एक छीनि धरि खाहीं ॥
हि दुर्वचन क्रुद्ध दशकन्धर । कुलिश समान लाग छांड़न शर ॥
रत भट घायल महि गिरे । जहं तहं मनहु अर्धजल परे ॥
चहि आंत गृध तट भये । जनु बंसी खेलत चित दये ॥
नाकार शिलीमुख धाये । दिशि अरु विदिशि गगनमंह छाये ॥
भट बहे चढ़े खग जाहीं । जिमि नावरि खेलहिं सरिमाहीं ॥
कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नानाविधि गावहिं ॥
नल बाण छांड़े रघुवीरा । क्षणमहं जरे निशाचर तीरा ॥
म्बुक-निकर दंत कटकटहीं । खाहिं अघाहिं हुआहिं डपटहीं ॥
टिन रुंड मुंड बिनु डोलहिं । सीस परे महि जय जय बोलहिं ॥
न प्रभुहिं पयादेहिं देषा । उर उपजा अति छोभ विशेषा ॥
रपति निज रथ तुरत पठावा । हर्ष सहित मातलि लै आवा ॥
थारूढ़ रघुनाथहिं देषो । धाये कपि बल पाइ विशेषी ॥
पति कोपि बान झरि लाई । घायल भे निशिचर समुदाई ॥

तानि सरासन श्रवन लगि, छांड़े विशिष कराल ॥
रामबाण नभ मग चले, लहलहात जनु व्याल ॥

ले बाण सपदि जनु उरगा । प्रथमहिं हते सारथी तुरगा ॥

रथ विभंजि हनि केतु पताका । गर्जा अति अन्तरबल थाका ॥
तुरत आन रथ चढ़ि खिसियाना । छांड़ेसि अस्त्र शस्त्र विधि नाना ॥
विकल होइं सब उद्यम ताके । जिमि परद्रोह निरत मन साके ॥
प्रभु बहु बार बाहु शिर हये । कटित झटित पुनि नूतन भये ॥
पुनि पुनि प्रभु काटहिं भुजशीशा । अति कौतुकी कोशलाधीशा ॥
रहे छाइ नभ शिर अरु बाहू । मानहुं अमित केतु अरु राहू ॥

जिमि जिमि प्रभु हत तासु शिर, तिमि तिमि होहिं अपार ।
सेवत विषय विवर्द्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥

समरभूमि दशकन्धर कोपा । बर्षि बाण रघुपति रथ तोपा ॥
दण्ड एक रथ देखि न परेऊ । जनु निहार महं दिनकर दुरेऊ ॥
हाहाकार सुरन सब कीन्हा । तब प्रभु कोपि धनुष कर लीन्हा ॥
शर निवारि रिपुके सिर काटे । ते दिशि विदिशि गगन महि पाटे ॥
काटे शिर नभ मारग धावहिं । जय जय धुनि कहि भय उपजावहिं ॥
कहं लछिमन हनुमन्त कपीशा । कहँ रघुवीर कोशलाधीशा ॥

पुनि रावण अति कोप करि, छांड़ी शक्ति प्रचण्ड ।
सन्मुख चली विभीषणहिं, मनहुं काल कोदण्ड ॥

आवत देखि शक्ति अति भारी । प्रणतारत हरि विरद संभारी ॥
तुरत विभीषण पाछे मेला । सन्मुख राम सहेउ सो शेला ॥
लगी शक्ति मूर्च्छा कछु भई । प्रभुकृत खेल सुरन्ह विकलई ॥
देखि विभीषण प्रभु श्रम पायउ । गहिकर गदा क्रोध करि धायउ ॥
रे कुभाग्य शठ मन्द कुबुद्धे । तै सुर नर मुनि नाग विरुद्धे ॥

दर शिव कहँ शीश चढ़ाये । एक एकके कोटिन पाये ॥
हि कारण खल अब लगि बाचा । अब तव काल शीश पर नाचा ॥
म विमुख शठ चहसि सम्पदा । अस कहि हनेसि मांझ उरगदा ॥

उमा बिभीषण रावणहिं, सन्मुख चितव कि काउ ॥
भिरत सो काल समान अब, श्री रघुबीर-प्रभाउ ॥
संभारि श्री रघुबीर धीर प्रचारि कपि रावण हन्यो ॥
महि परत पुनि उठि लरत देवन युगल कहँ जय जय भन्यो ॥
हनुमन्त संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ॥
रणमत्त रावण सकल सुभट प्रचंड भुज-बल दलि मले ॥

न्तर्धान भयो क्षण एका । पुनि प्रकटेसि खल रूप अनूपा ॥
घुवर-कटक भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रकट दशानन तेते ॥
खे कपिन अमित दशशीशा । भागे भालु विकल भटकीशा ॥
ले बलीमुख धरहिं न धीरा । त्राहि त्राहि लक्ष्मण रघुबीरा ॥
भु क्षण महँ सब माया काटी । जिमि रवि उदय जाहि तम काटी ॥
वण एक देखि सुर हर्षे । विपुल सुमन पुनि प्रभु पर वर्षे ॥

तब रघुपति लंकेशके, शीश भुजा शर चाप ।
काटे भये नवीन पुनि, जिमि तीरथके पाप ॥
मूर्छा गइ कपि भालु तब, सब आये प्रभु पास ॥
सकल निशाचर रावणहिं, घेरि रहे अति त्रास ॥

मुख मलीन उपजी मन चिन्ता । त्रिजटासन बोली तब सी[illegible]
होइहि कहा कहसि किन माता । केहि विधि मरिहि विश्व दुखदा[illegible]

रावण-बध

कह त्रिजटासन राजकुमारी । उर शर लागत मरिहि सुरा[illegible]
ताते प्रभु उर हतहिं न तेही । इहके हृदय वसत वैदे[illegible]

इहिके हृदय वस जानकी मम जानकी उर वासहै।
मम उदर भुवन अनेक लागत वाण सवको नाशहै।
अस सुनत हर्ष विषाद उर अति देखि पुनि त्रिजटा क[illegible]
अब मरिहि रिपुइहि भांति सुन्दरि तजहु तुम संशय म[illegible]
काटत शिर होइहि विकल, छूटि जाइ तव ध्यान ॥
तब रावणके हृदय शर, मारहिं राम सुजान ॥

अस कहि बहु प्रकार समुझाई । पुनि त्रिजटा निज भवन सि[illegible]
राम-स्वभाव सुमिरि वैदही । उपजी बिरह-व्यथा अति ते[illegible]
निसिहिं शशिहिं निन्दति बहुभांती । युगसम भई बिहाति न रा[illegible]
करत विलाप मनहिं मन भारी । राम-विरह जानकी दुखा[illegible]
जब अति भयो विरह-उर-दाहू । फरकेउ वाम नयन अरु [illegible]
शकुन विचारि धरेउ उर धीरा । अब मिलिहहिं कृपालु रघुबी[illegible]
इहां अर्द्ध निशि रावन जागा । निज सारथि सन खीझन ला[illegible]
शठ रणभूमि छुड़ायहु मोहीं । धिक धिक अधम मन्दमति तो[illegible]
तेइ पदगहि बहु विधि समुझावा । भोर भये रथ चढ़ि पुनि आ[illegible]

ुनि आगमन दशानन केरा । कपिदल खरभर भयउ घनेरा ॥
हँ तहँ भूधर विटप उपारी । धाये कटकटाइ भट भारी ॥
ाटत बढ़हिं शीश समुदाई । जिमि प्रति-लाभ लोभ अधिकाई ॥
रै न रिपु श्रम भयउ विशेखा । राम विभीषण तन तब देखा ॥
मा काल मरु जाकी इच्छा । सो प्रभु जनकी लेत परिच्छा ॥
ुनु सर्वज्ञ चराचर-नायक । प्रणतपाल सुरमुनि-सुख-दायक ॥
ाभी-कुंड सुधा वस वाके । नाथ जियत रावण बल ताके ॥
ुनत विभीषण वचन कृपाला । हर्षि गहे प्रभु बान कराला ॥
ायक एक नाभि सर सोषा । अपर लगे सिर भुज करि रोषा ॥
ै शिर बाहु चले नाराचा । शिर भुजहीन रुंड महि नाचा ॥
रनि धसै धर धाव प्रचण्डा । तब शर हति प्रभु कृत युग खण्डा ॥
ाजेउ मरत घोररव भारी । कहां राम रण हतौं प्रचारी ॥
ोली भूमि गिरत दशकन्धर । क्षुभित सिन्धु सरि दिग्गज भूधर ॥
रेउ भूमि युग खंड बढ़ाई । चापि भालु मर्कट समुदाई ॥
न्दोदरि आगे भुज शीशा । धरि शर चले जहां जगदीशा ॥
विशे सब निषंग महं आई । देखि सुरन दुन्दुभी बजाई ॥
र्षहिं सुमन देव मुनिवृन्दा । जय कृपालु जय जयति मुकुन्दा ॥
ति-शिर दीख जबहिं मन्दोदरि । मूर्छित विकल खसी धरनी परि ॥
तिगति देखि सो करति पुकारा । छूटे केश न देह संभारा ॥
र ताड़ना करै बिधि नाना । रोदन करै प्रताप बखाना ॥
ोदन करत विलोकेउ नारी । भयो विभीषण मन दुख भारी ॥

वन्धु-दशा देखत दुख भयऊ । तब प्रभु अनुजहिं आयसु दयऊ ॥
लछिमन तेहि बहुविधि समुझाये । सहित विभीषण प्रभु पहँ आये ॥
कृपादृष्टि प्रभु ताहि विलोका । करहु क्रिया परिहरि सब शोका ॥
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी । विधिवत् देश काल गति जानी ॥

मयतनयादिक नारि सब, देइ तिलांजलि ताहि ॥
भवन गईं रघुवीर-गुण, गण बरणति मन माहिं ॥

आइ विभीषण पुनि सिर नावा । कृपासिन्धु तब अनुज बुलावा ॥
तुम कपीश अंगद नल नीला । जाम्बवन्त मारुतसुत शीला ॥
सब मिलि जाहु विभीषण साथा । सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा ॥
पिता-वचन मैं नगर न जाऊं । आपु सरिस कपि अनुज पठाऊं ॥
तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना । कीन्ही जाइ तिलककी रचना ॥
सादर सिंहासन बैठारी । तिलक कीन्ह अस्तुति अनुसारी ॥
जोरि पानि सबहीं शिर नाये । सहित विभीषण प्रभु पहँ आये ॥
तब रघुवीर बोलि कपि लीन्हे । कहि प्रियवचन सुखी सब कीन्हे ॥
तब प्रभु बोलि लिये हनुमाना । लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥
समाचार जानकिहिं सुनावहु । तासु कुशल लै तुम चलि आवहु ॥
तब हनुमान नगर महँ आये । सुनि निशिचरी निशाचर धाये ॥
पूजा बहु प्रकार तिन कीन्हीं । जनकसुता दिखाय पुनि दीन्हीं ॥
दूरिहिंते प्रणाम कपि कीन्हा । रघुपतिदूत जानकी चीन्हा ॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुशल अनुज प्रभु सेन समेता ॥
सब विधि कुशल कोशलाधीशा । मातु समर जीतेउ दशशीशा ॥
अविचल राज्य विभीषण पावा । सुनि कपि बचन हर्ष उर छावा ॥

तब हनुमन्त राम पहं जाई । जनकसुता कर कुशल सुनाई ॥
सुनि बानी पतंग-कुल-भूषण । बोलि लिये कपिराज बिभीषण ॥

जानकीका रामके पास जाना

मारुतसुतके संग सिधावहु । सादर जनकसुता लै आवहु ॥
तुरतहिं सकल गये जहं सीता । सेवहिं सब निशिचरी विनीता ॥
बेगि विभीषण तिनहिं सिखावा । सादर तिन सीतहिं अन्हवावा ॥
दिव्य वसन भूषण पहिराये । शिविका रुचिर साज पुनि लाये ॥
तेहि पर हर्षि चढ़ी वैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥
बेतपानि रक्षक चहुंपासा । चले सकल मन परम हुलासा ॥
देखन भालु कोश सब धाये । रक्षक क्रोटि निवारन आये ॥
कह रघुवीर कहा मम मानहु । सीतहिं सखा पयोदहि आनहु ॥
देखहिं कपि जननीकी नाईं । विहंसि कहा रघुवीर गुसाईं ॥
सुनि प्रभु-वचन भालु कपि हरषे । नभते सुरन सुमन बहु वरषे ॥
सीतहिं प्रथम अग्नि महँ राखी । प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी ॥

तेहि कारण करुना-अयन, कहे कछुक दुर्वाद ।
सुनत यातुधानी सकल, लागी करन विषाद ॥

प्रभुके वचन शीश धरि सीता । बोली मन क्रम वचन पुनीता ॥
लक्ष्मण होउ धर्मके नेगी । पावक प्रगट करहु तुम बेगी ॥
सुनि लक्ष्मण सीताकी बानी । विरह विवेक धर्म रतिसानी ॥
देखि राम रुख लक्ष्मण धाये । पावक प्रगटि काठ बहु लाये ॥
प्रबल अनल विलोकि वैदेही । हृदय हर्ष कछु भय नहिं तेही ॥

जो मन-क्रम-वच-मम उर माहीं । तजि रघुवीर आन गति नाहीं
तो कृशानु सबकी गति जाना । मोकहं होहु श्रीखण्ड समाना
तव रघुपति अनुशासन पाई । मातलि चले चरन शिर नाई
आये देव सदा स्वारथी । वचन कहहिं जनु परमारथी

विनय कीन्ह बहु भांति विधि, प्रेम प्रफुल्लित गात।
वदन विलोकत रामकर, लोचन नाहिं अघात ॥

तेहिं अवसर दशरथ तहं आये । तनय विलोकि नयन जल छाये।
सहित अनुज प्रणाम प्रभु कीन्हा । आशिर्वाद पिता तव दीन्हा।
तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ । जीतेउं अजय निशाचर राऊ।
सुनि सुत-वचन प्रीति अति बाढ़ी । नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी।
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना । चितै पितहिं दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना।
ताते उमा मोक्ष नहिं पावा । दशरथ भेद-भक्ति-मन लावा।
सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं । तिन्ह कहं राम भक्ति निज देहीं।
वार वार करि प्रभु हिं प्रनामा । दशरथ हर्षि गये निज धामा।
सुनु सुरपति कपि भालु हमारे । परे भूमि निशिचरके मारे।
ममहित लागि तजे इन प्राना । सकल जिआउ सुरेश सुजाना।
सुधा बरषि कपि भालु जियाये । हर्षि उठे सब प्रभु पहँ आये।
सुधा वृष्टि भइ दोउ दल माहीं । जिये भालु कपि निशिचर नाहीं।

विभीषणकी विनती

नाइ चरन सिर कह मृदुबानी । विनय सुनिय मम शारंगपानी।
अब जन-गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जन करिय सकल श्रम छीजे।

शा-कोश-मन्दिर सम्पदा। देहु कृपालु कपिन कहं मुदा॥
सब विधि नाथ मोहिं अपनाइय। पुनि मोहिं सहित अवधपुर जाइय॥
सुनत वचन मृदु दीन दयाला। सजल भये हरि-नयन विशाला॥

तोर कोश गृह मोर सब, सत्य वचन सुनु तात॥
दशा भरतकी सुमिरि मोहिं, पलक कल्पसम जात॥

सुनत विभीषण वचन रामके। हर्षि गहे पद कृपा-धामके॥
बानर भालु सकल हर्षाने। प्रभुपद गहि गुन बिमल बखाने॥
बहुरि विभीषण भवन सिधाये। मणिगन वसन बिमान भराये॥

विभीषणका पट भूषण बरसाना

लै पुष्पक प्रभु आगे राखा। हंसिकै कृपासिन्धु अस भाषा॥
चढ़ि विमान सुन सखा विभीषण। गगन जांइ बर्षहु पट भूषण॥
नभ पर जाइ विभीषण तबहीं। बर्षि दिये पट भूषण तबहीं॥
जो जेहि मन भावै सो लेहीं। मणिमुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हंसत राम सिय अनुज समेता। परम कौतुकी कृपानिकेता॥
भालु कपिन पट भूषण पाये। पहिरि पहिरि रघुपति पहं आये॥
चितै सबनि पर कीन्ही दाया। बोले मधुर वचन रघुराया॥
तुम्हरे बल मैं रावण मारा। तिलक विभीषण कहं पुनि सारा॥
निज निज गृह अब तुम सब जाहू। सुमिरहु मोहिं डरहु जनि काहू॥
वचन सुनत प्रेमाकुल बानर। जोरि पाणि बोले सब सादर॥
सुनि प्रभु वचन लाज हम मरहीं। मशक कबहुं खगपति हित करहीं॥

मित्रों समेत राम अयोध्या चले

अतिशय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल विमान चढ़ाई॥

मन महं विप्र चरण शिरनावा । उत्तर दिशहि बिमान चलावा
सिंहासन अति उच्च मनोहर । सिय समेत बैठे प्रभु तापर
राजत राम सहित भामिनी । मेरु शृङ्ग जनु घनदामिनी
रुचिर विमान चला अति आतुर । कीन्ही सुमन वृष्टि हर्षे सुर
परम सुखद चलि त्रिविध बयारी । सागर सुरसरि निर्मल वारी
शकुन होहि सुन्दर चहुंपासा । मन प्रसन्न निर्मल आकाशा

रामका सीताको मार्गके दृश्य दिखाना

कह रघुबीर देख रण सीता । लछिमन हत्यो इहां इंद्रजीता
कुम्भकर्ण रावण दोउ भाई । इहां हतेउं सुर-मुनि-दुखदाई

सुन्दर सेतु देखु यह, थापेउं शिव सुखधाम।
सीता सहित कृपायतन, शम्भुहिं कीन प्रनाम॥
जंहं जहं कृपासिन्धु वन, कीन्ह बास विश्राम।
सकल दिखाये जानकिहिं, कहि कहि सबके नाम॥

सपदि विमान तहां चलि आवा । दण्डकवन जहं परम सुहावा
कुम्भजादि मुनि नायक नाना । गये राम सबके अस्थाना
सकल मुनिन सों पाइ अशीषा । आये चित्रकूट जगदीशा
तहं करि ऋषिन केर सन्तोषा । चला बिमान तहां ते चोखा
बहुरि राम जानकी दिखाई । यमुना कलिमल हरणि सुहाई
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रणाम करु सीता
देखि राम पावन पुनि वेनी । हरण शोक सुरलोक निसेनी
देखी अवधपुरी अति पावनि । त्रिविधताप भव दाप नसावनि

बहुरि त्रिवेनी आइ प्रभु, हर्षित मज्जन कीन्ह।
कपिन सहित महि सुरन्ह कहं, दान विविध विधि दीन्ह॥

रामका हनुमानको अयोध्या भेजना

प्रभु हनुमन्तहि कहा बुझाई। धरि द्विज रूप अवधपुर जाई॥
भरतहिं कुशल हमारि सुनावहु। समाचार लै पुनि चलि आवहु॥
तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहं गयऊ॥
नानाविधि पूजा मुनि कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आशिष दीन्ही॥
मुनि-पद वन्दि युगल कर जोरी। चढ़ि विमान प्रभु चले बहोरी॥
सुरसरि लांघि यान जब आवा। उतरा तहँ प्रभु आयसु पावा॥
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरणन परी॥
दीन्ह अशीष मुदित मन गंगा। सुन्दरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनतहिं गुह धावा प्रेमाकुल। आवा निकट परम सुखसंकुल॥
प्रभुहि विलोकि सहित वैदेही। परेउ अवनि तनु सुधि नहिं तेहीं॥
परम प्रीति विलोकि रघुराई। हर्षि उठाइ लीन्ह उर लाई॥

समर विजय रघुवीरकर, सुनहिं जे सन्त सुजान।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान॥

उत्तरकाण्ड आरम्भ

रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुरलोग।
जहं तहं सोचहिं नारिनर, कृशतनु राम-वियोग॥
शकुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सबकेर
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुं फेर॥
कौशल्यादिक मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आये प्रभु सिय अनुज युत, कहन चहत अस कोइ॥
भरत-नयन-भुजदक्षिण, फरकहिं बारहिं बार।
जानि शकुन मन हर्ष अति, लागे करन विचार॥

हनुमानका भरतको समाचार देना

रहा एक दिन अवधि-अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारण कवन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल प्रभु मोहिं बिसराये॥

रामविरह सागर महं, भरत मगन मन होत॥
विप्ररूप धरि पवनसुत, आइ गयो जिमि पोत॥
बैठे देखि कुशासन, जटा मुकुट कृशगात॥
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात॥

देखत हनूमान अति हर्षे। पुलकि गात लोचन जल बर्षे॥

तमहं बहुत भाँति सुख मानी। बोले श्रवण-सुधासम बानी॥
पु रण जीति सुयश सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥
नत वचन बिसरे सब दूखा। तृषावन्त जनु पाय पियूषा॥
ो तुम तात कहाँते आये। मोहिं परम प्रिय वचन सुनाये॥
ारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥
ीनबन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटे उठि सादर॥
िलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥
ार वार पूंछो कुशलाता। तो कहं काह देउं सुनु भ्राता॥
ाहिन उऋण तात मैं तोहीं। अब प्रभु-चरित सुनावहु मोहीं॥
ब हनुमान नाइ पदमाथा। कहेसि सकल रघुपति-गुन-गाथा॥

भरत-चरन सिर नाइ, तुरत गयेउ कपि राम पहं॥
कही कुशल सब जाइ, हर्षि चले प्रभु यान चढ़ि॥

रामागमन-समाचारसे अयोध्यामें हर्ष

र्ष भरत कोशलपुर आये। समाचार सब गुरुहिं सुनाये॥
ुनि मन्दिर महं बात जनाई। आवत नगर कुशल रघुराई॥
सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु-कुशल भरत समुझाई॥
समाचार पुरवासिन पाये। नर अरु नारि हर्षि उठि धाये॥
दधि-दूर्वा-रोचन-फल-फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला॥
भरि भरि थार हेम वर-भामिनि। गावत चलीं सिन्धुरगामिनि॥
रविकुल-कमल-दिवाकर आवत। नगर मनोहर कपिन देखावत॥

अयोध्यामें रामका सबसे मिलना

सुनु कपीश अंगद लंकेशा। पावनपुरी रुचिर यह देशा॥

जन्मभूमि मम पुरी सोहावनि । उत्तर दिशि सरयू बह पावनि
जो मज्जहिं सो बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं वास
आये भरत संग सब लोगा । कृशतनु श्रीरघुबीर-वियोगा
वामदेव वसिष्ठ मुनिनायक । देखे प्रभु महिधरि धनुसायक
धाइ धरे गुरुचरण सरोरुह । अनुज सहित अति पुलकि तनूरुह
भेंटे कुशल पूंछि मुनिराया । हमरे कुशल तुम्हारिहि दाया
सकल द्विजन कहं नायउ माथा । धर्म-धुरन्धर रघुकुल-नाथा
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नवहिं जिनहिं शंकर मुनि अज
परे भूमि नहिं उठत उठाये । बल करि कृपासिन्धु उर लाये
श्यामलगात रोम भये ठाढ़े । नव-राजीवनयन जल बाढ़े
भरत अनुज लक्ष्मण तब भेंटे । दुसह-विरह-सम्भव दुख मेटे
सीता-चरण भरत शिर नावा । अनुज समेत परम सुख पावा
प्रभु बिलोकि हरखे पुरवासी । जनित-वियोग विपति सब नासी
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी
अमितरूप प्रकटे तेहि काला । यथायोग्य मिलि सबहिं कृपाला
कौशल्यादि मातु सब धाईं । निरखि वच्छ जनु धेनु लवाईं
सासुन सबहिं मिली वैदेही । चरणन लागि हर्ष अति तेही
देहिं अशीष पूंछि कुशलाता । होइ अचल तुम्हार अहिवाता
सब रघुपति-पद-कमल विलोकी । मंगल जानि नयन-जल रोकी
कनकथार आरती उतारहिं । बार बार प्रभु गात निहारहिं
नानाभांति निछावरि करहीं । परमानन्द हर्ष उर भरहीं
कौशल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं । चितवहिं कृपासिन्धु रणधीरहिं

दय विचारति वारहिं वारा । कवन भांति लंकापति मारा ॥
ति सुकुमार युगल मम वारे । निशिचर सुभट महावल मारे ॥
नि रघुपति निज सखा वुलाये । मुनि-पद लागहु सवहिं सिखाये ॥
रुवसिष्ठ कुलपूज्य हमारे । इनकी कृपा दनुज रण मारे ॥
सब सखा सुनहु मुनि मेरे । भये समर सागर कहं वेरे ॥
म हित लागि जन्म इन हारे । भरतहुंते मोहिं अधिक पियारे ॥
नि प्रभु-वचन मगन सव भये । निमिष निमिष उपजत सुख नये ॥

कौशल्याके चरण युग, पुनि तिन नायउ माथ ।
आशिष दीन्ही हर्षि हिय, तुम प्रिय जिमि रघुनाथ ॥
सुमनवृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकन्द ॥
चढ़े अटारिन्हं देखहीं, नगर नारि नरवृन्द ॥

अयोध्यामें आनन्दोत्सव

कंचन कलश विचित्र संवारे । सवनि धरे सजि निज निज द्वारे ॥
न्दनवार पताका केतू । सवन्हि वनाये मंगल-हेतू ॥
वीथिन सकल सुगंधि सिचाये । गजमणि रचि वहु चौक पुराये ॥
नानाभांति सुमंगल साजे । हर्षि निसान नगर वहु वाजे ॥
हं तहं नारि निछावरि करहीं । देहिं अशीष हर्ष उर भरहीं ॥
कंचन-थार आरती नाना । युवती साजि करहिं कलगाना ॥
करहिं आरती आरतहरकी । रघुकुल कमल विपिन दिनकरकी ॥
पुरशोभा सम्पति कल्याना । निगम, शेष शारदा वखाना ॥
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं । उमा तासु गुण नर किमि कहहीं ॥

प्रभु जाना केकयी लजानी । प्रथम तासु गृह गये भवानी ॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गवन प्रभु कीन्हा ॥

रामाभिषेक

गुरुवसिष्ठ द्विज लिये बुलाई । आजु सुघरी सुदिन सुखदाई ॥
सब द्विज देहु हर्षि अनुशासन । रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन ॥
मुनि वसिष्ठके वचन सुहाये । सुनत सकल विप्रन मन भाये ॥
कहहिं वचन मृदु विप्र अनेका । जग अभिराम राम अभिषेका ॥
अब मुनिवर विलम्ब नहिं कीजै । महाराज कहं आयसु दीजै ॥

जहं तहं धावन पठै पुनि, मंगल द्रव्य मंगाइ ॥
हर्ष समेत वसिष्ठपद, पुनि शिर नायउ आइ ॥
तब मुनि कहेउ सुमन्त्र सन, तुरत चले शिर नाइ ॥
रथ अनेक गज बाजि बहु, सकल संवारे जाइ ॥

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन सुमन-वृष्टि झरि लाई ॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ॥
सुनत वचन जन जहं तहं धाये । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये ॥
पुनि करुणानिधि भरत हंकारे । निजकर जटा राम निरवारे ॥
अन्हवाये पुनि तीनिहु भाई । भक्त-बछल कृपालु रघुराई ॥
पुनि निज जटा राम बिवराये । मुनि अनुशासन पाइ अन्हाये ॥
करि मज्जन भूषण प्रभु साजे । अंग अनंग कोटि छवि लाजे ॥

सासुन सादर जानकिहिं, मज्जन तुरत कराइ ॥
दिव्य वसन वर भूषणनि, अँग अँग सजे बनाइ ॥

राम बाम दिशि शोभित, रमा रूप गुणखानि ॥
देखि मातु सब हर्षित, जन्म सफल निज जानि ॥

जनकसुता समेत रघुराई । देखि प्रहर्षे मुनि समुदाई ॥
वेदमंत्र द्विजवर उच्चारे । नभ सुर-मुनि जय जयति पुकारे ॥
प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब विप्रन आयसु दीन्हा ॥
सुत विलोकि हर्षित महतारी । बार बार आरती उतारी ।
विप्रन दान विविध विधि दीन्हे । याचक सकल अयाचक कीन्हे ॥
सिंहासन पर त्रिभुवन-सांई । देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई ॥

भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गे सुर निज निज धाम ॥
वन्दि वेष धरि वेद तब, आये, जहं श्रीराम ॥
प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपानिधान ॥
लखा न काहू मर्म कछु, लगे करन गुणगान ॥

जय सगुण निर्गुणरूप राम अनूप भूपशिरोमने ।
दशकन्धरादि प्रचण्ड निशिचर प्रबल-खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसार-भार विभंजि दारुण दुख दहे ।
जय प्रणतपाल दयालु प्रभु संयुक्त शक्ति नमामहे ॥१॥
तब विषय मायावश सुरासुर-नाग-नर-अग जग हरे ।
भव-पंथ भ्रमित श्रमित दिवस निशि काल कर्म गुणनि भरे ।
जेहि नाथ करि करुणा विलोकहु त्रिविध दुख ते निर्वहे ।
भव-खेद-छेदन-दक्ष हम कहं रक्ष राम नमामहे ॥२॥
जे चरण शिव-अज-पूज्य रज-शुभ परसि मुनिपत्नी तरी ।
नखनिर्गता सुरवन्दिता त्रैलोक्यपावनि सुरसरी ।

ध्वज-कुलिश-अंकुशकंजयुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पदकंज द्वंद्व मुकुन्दराम रमेश नित्य भजामहे ॥३॥
जे ज्ञानमान-विमत्त तव भव हरणि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।
विश्वास करि सब आश परिहरि दास तव जे हो रहे।
जपि नाम तव विनु श्रम तरहिं भवनाथ राम नमामहे ॥४॥

अर्थ—हे अनूपरूप भूपशिरोमणे ! राम आपकी जय हो। आपके सगुण निर्गुण रूपोंमें यह रूप प्रधान है। आप रावण आदि भयंकरराक्षसोंको अपनेभुजाओंके बलसे नाश करनेवाले हैं और मनुष्यका अवतार धारणकर संसारके भारको उतार दारुण दुःखके जला देनेवाले हैं। दीनोंके पालनेवाले दयायुक्त शक्तिसहित आपको हम प्रणाम करते हैं। १।

हे हरे ! आपकी तीक्ष्णमाया अर्थात् अविद्याके वशमें होकर सुर, असुर, नाग, नर और चर और अचर संसारके मार्गमें रात दिन घूमते हुए थक गये हैं। इस पर भी उनके ऊपर कालकर्म गुणोंके अनुकूल बोझ रखा है। हे नाथ ! जिन पर आप करुणा करके दृष्टि करते हैं वही तीनों प्रकारके दुःखों अर्थात् काल कर्म गुणोंसे छूट जाते हैं। हे जगतके दुःख काटनेमें चतुर रामजी ! हमारी रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं। २।

जिन चरणोंकी रजका शिव ब्रह्मा पूजन करते हैं और जिनको स्पर्शकर मुनिकी पत्नी अहल्या तर गयी और जिनके नखोंसे नमस्कार योग्य त्रैलोक्यपावनी गंगा निकली हैं और जिनके चरणोंमें ध्वज कुलिश अंकुशके चिन्ह हैं जिनमें वनोंमें फिरनेसे कांटे आदिके चिन्ह पड़ गये हैं, हे लक्ष्मीपति राम ! आपके उन मोक्ष देने वाले दोनों चरणकमलोंका हम भजन करते है।३।

जिन्होंने ज्ञान मानसे मतवाले होकर आपकी भक्तिका आदर नहीं किया है उन्हें हम सुरदुर्लभपदको पाकर भी पतित होते देखते हैं और जो सब आशा

अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट्कन्ध शाखा पंचविंश अनेक पर्ण सुमन घने।
फल युगल विधि कटुमधुरवेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवित फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे ॥५॥
जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं।
करुणायतन प्रभु सद्गुणाकर देव यह वर मांगहीं।
मन कर्म वचन विकार तजि तव चरण हम अनुरागहीं ॥६॥

ढ़ विश्वास करके आपके दास हो रहे हैं, वे आपका नाम जपके विना श्रमही भवसागर पार हो जाते हैं। ऐसे आपका हम भजन करते हैं।

इस संसाररूपी वृक्षकी जड अर्थात् माया अदृश्य है और यह वृक्ष अनादि है। इसमें अंडज, पिंडज स्वेदज, जरायुज ये चार वक्कल हैं ऐसा वेद शास्त्र कहते हैं और इसमें छ स्कंध हैं सुख, दुःख, शीत, उष्ण, ज्ञान, अज्ञान। इन छ स्कन्धोंसे पच्चीस शाखाएँ निकलती हैं। पांच तत्व हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, और पांच इनके विषय हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रसऔर गन्धतथा दस इन्द्रियां नाक,कान, आंख, जीभ और खाल तथा चरण, लिंग, गुदा, हाथ और वाणी और मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और महत्तत्त्व और अनेक प्रकारकी वासना पत्तोंके समूह हैं जो लगते और झड़ते रहते हैं और अनेक प्रकारके संकल्प फूल हैं; किसीमें फल लगता है कोई वैसे ही गिर पडता है। वे फल पाप पुण्यरूप होनेसे दो प्रकारके हैं एक खट्टा एक मीठा। उसपर अविद्या मायाकी बेल चढ़ी हुई है। उसमें नित पल्लव निकलते हैं और वह नित्य फूलती रहती है। ऐसे संसार वृक्षरूपी आपको हम नमस्कार करते हैं। ५।

सबके देखत वेदन, विनती कीन्ह उदार।
अन्तर्द्धान भये तब, गये ब्रह्म-आगार॥
वैनतेय सुन शंभु तब, आये जहं रघुवीर।
विनय करत गद्गदगिरा, पूरित पुलक शरीर॥

जय राम रमारमणं शमनं, भवताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेश सुरेश विभो, शरणागत मांगत पाहि प्रभो।
दशशीश-विनाशन-वीसभुजा, कृतदूरि महामहिभूरिरुजा।
रजनीचरवृन्द पतंग रहे, शरपावक-तेज प्रचण्ड दहे॥१॥
महिमण्डल मण्डन चारुतरं, धृतशायक-चापनिषंगवरं।
मदमोह-महा-ममतारजनी, तमपुंजदिवाकर तेज-अनी।
मनजात किरात निपात किये, मृगलोग कुभोग शरेन हिं
हितनाथ अनाथनि पाहि हरे, विषयावश पामर भूलि परे
वहुरोग वियोगन्ह लोग हये, भवदंघ्रि निरादरके फल ये
भवसिन्धु अगाध परे नर ते, पदपंकज प्रेम न जे करते।
अति दीन मलीन दुखी नितही, जिनमें पदपंकज प्रीति नहीं
अवलंब भवंतकथा जिनको, प्रियसंतअनंत सदा तिनको।
नहिंराग न रोष न मान मदा, तिनके सम वैभव वा विपदा
यहिते तव सेवक होत मुदा, मुनि त्यागत योग भरोस सदा

जो जन यह समझकर आपका ध्यान करते है कि आप ब्रह्मरूप जन्मरहित
अनुभवसेही जानने योग्य और मनसे परे हैं सोकहें औरजाने हम तो आपकेही
रूपका नित्य यश गाते है। हे देव करुणानिधान सद्गुणोंकी खान आपसेहम यही
मांगते हं कि मन वचन कर्मसे विकार तज आपके चरणोंमें हम प्रीति करते रहें

करि प्रेम निरंतर नेम लिये, पदपंकज सेवत शुद्ध हिये।
सम मान निरादर आदरही, सब सन्त सुखी विचरन्ति मही ॥८
मुनि मानस पंकज भृङ्ग भजे, रघुवीर महारणधीर अजै।
तव नाम जपामि नमामि हरी, भवरोग महामद मान अरी ॥९
गुणशील कृपा परमायतनं, प्रणमामि निरंतर श्रीरमनं।
रघुनन्दनिकन्दन द्वन्द्वघनं, महिपाल बिलोकय दीनजनं ॥ १०॥

हे रमारमण राम! आप जरामरणके दूर करनेवाले और डरसे व्याकुलजनोंकी रक्षा करनेवाले हैं। हे अवधेश, सुरेश, रमेश और व्यापक प्रभो! शरणागतको रक्षा कीजिये। आपने दशशिर बीस भुजाओंवाले रावणका नाश कर पृथ्वीके महा रोगको दूर किया और जो पतंग रूपी राक्षसोंके समूह थे, वे आपका बाणरूपी अग्निमें जल गये।१।२

पृथ्वीमंडलके आप श्रेष्ठ भूषण हैं। धनुष बाण तरकस धारण किये हुए मद मोह ममताकी बड़ी अँधेरी रातके नाश करनेमें आप तेजसेनाके सूर्य हैं। कामरूप बहेलियेने उन मृगरूपी लोगोंको, कुभोगबाण हृदयमें मार गिराया। हे हरे, हितैषी नाथ आप अनाथोंकी रक्षा कीजिये जो विषयरूपी गहन वनमें भूले पड़े हैं।३।४

उनमें बहुतेरे लोगोंमें कोई रोग और कोई मरे हुओंके वियोगमें नष्ट हुए सो यह आपके चरणोंके निरादरका फल है और वे इस अथाह भवसागरमें पड़े डूबते हैं, क्योंकि उन्होंने आपके चरणकमलमें प्रेम नहीं किया। जिनको आपके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं है, वे नित्यही दीन और मलीन दुःखी रहते हैं और जिनको आपकी कथाका अवलम्ब है उनको सन्त सदा प्यारे हैं।५।६

सन्त वे हैं, जिनको राग, रोष, मान, मद नहीं है, और जिन्हें विपत्ति सम्पत्ति

बार बार बर मांगौं, हर्षि देहु श्रीरंग ॥
पदसरोज अनपावनी, भक्ति सदा सतसंग ॥
बरणि उमापति रामगुण, हर्षि गये कैलास ॥
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब विधि सुखप्रद बास ॥

सुनु खगपति यह कथा सुहावनि । त्रिविध ताप भवदोष नसावनि ॥
महाराज कर शुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर विरति विवेका ॥
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख सम्पति नानाविधि पावहिं ॥

परमानन्द मगन कपि, सबके प्रभु-पद-प्रीति ॥
जात न जानेउ दिवस निशि, गये मासषट बीति ॥

रामका मित्रों को बिदा करना

बिसरे गृह स्वप्ने सुधि नाहीं । जिमि परद्रोह सन्त मन माहीं ॥
तब रघुपति सब सखा बुलाये । आइ सबहिं सादर शिर नाये ॥

समान है। इसीसे आपके सेवक आनन्दसे रहते हैं और मुनि आपके भरोसे योगको छोड़ देते हैं। जो आपके प्रेमका नियम लिये शुद्धहृदयसे आपके चरणकमलकी सेवा करते हैं और आदर अनादरको समान समझ कर पृथ्वीपर सुखसे विचरते हैं।

ऐसे मुनियोंके मनकमलके लिये आप भ्रमरके समान हैं। हे रघुबीर! आप महा रणधीर और अजय हैं। हे हरे ! ऐसे आपके नामको हम जपते हैं और आपको प्रणाम करते हैं, क्योंकि आपका नाम भवरोग, महामद और मानका शत्रु है। हे ! लक्ष्मीपति, आप गुणशील, कृपा और परम शोभाके घर हैं। मैं निरन्तर आपको प्रणाम करता हूं। ०द्वंद्वघन अर्थात् रावण कुम्भकर्णके नाशक रघुनाथ महिपाल कृपाकर मुझ दीन जनकी ओर देखिये। ९। १०

प्रेम समेत निकट बैठारे। भक्तसुखद मृदु वचन उचारे॥
तुम अति कीन्ह मोरि सेवकाई। मुख पर केहि विधि करौं बड़ाई॥
ताते मोहिं तुम अति प्रिय लागे। ममहित लागि भवन सुख त्यागे।
अनुज राज्य सम्पति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सब मोहि प्रिय नहिं तुमहिं समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥
सब कहं प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती॥

अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहिं दृढ़नेम।

सदा सर्वगत सर्व हित, जानि करेहु अति प्रेम॥

सुनि प्रभु वचन मगन सब भये। को हम कहाँ बिसरि गृह गये॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। कहि न सकत कछु अति अनुरागे॥
परम प्रीति तिनकर प्रभु देखी। कहा विविध विधि ज्ञान विशेषी॥
प्रभु सन्मुख कछु कहै न पारहिं। पुनि पुनि चरणसरोज निहारहिं॥
तब प्रभु भूषण वसन मंगाये। नाना रंग अनूप सुहाये॥
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराये। भरत वसन निज हाथ बनाये॥
प्रभु प्रेरित लक्ष्मण पहिराये। लंकापति रघुपति मन भाये॥
अंगद बैठि रहे नहि डोले। प्रीति जानि प्रभु ताहि न बोले॥

जाम्बवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि राम स्वरूप सब, चले नाय पद माथ॥
तब अंगद उठि नाइ शिर, सजल नयन करजोरि।
अति विनीत बोले बचन, मनहुं प्रेम-रस बोरि॥
अंगद वचन विनीत सुनि, रघुपति करुणासींव।
प्रभु उठाइ उर लायऊ, सजल नयन राजीव॥

निज उरमाला वसन मणि, बालितनय पहिराय।
विदा किये भगवान तब, बहु प्रकार समुझाय॥

भरत अनुज सौमित्र समेता। पठवन चले भक्तकृत चेता॥
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितवत प्रभुकी ओरा॥
बार बार करि दण्ड प्रणामा। मन अस रहन कहहिं मोहिं रामा॥
प्रभुरुख देखि विनय बहु भाषी। चले हृदय पदपंकज राषी॥
तब सुग्रीव चरण गहि नाना। भांति विनय कीन्हो हनुमाना॥
दिन दश करि रघुपति पद-सेवा। तब फिरि चरण देखिहौं देवा॥
पुण्यपुंज तुम पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपालु आगारा॥
अस कहि कपिपति चले तुरन्ता। अंगद कहेउ सुनहु हनुमंता॥

करेहु दण्डवत प्रभुसन, तुमहिं कहौं करजोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायहु मोरि॥
अस कहि चलेउ वालिसुत, फिरि आये हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभुसन कही, मगन भये भगवंत॥
कुलिशहुं चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेश रघुनाथ अस, समुझि परै कहु काहि॥

पुनि कृपालु लिये बोलि निषादा। दीन्हेउ भूषण वसन प्रसादा॥
जाहु भवन मम सुमिरण करहू। मन क्रम वचन धर्म अनुसरहू॥
तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहहु पुर आवत जाता॥
वचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरण लोचन भरि बारी॥
चरणकमल उरधरि गृह आवा। प्रभु प्रभाव परिजनहिं सुनावा॥
रघुपति-चरित देखि पुरवासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥

राम-राज्यका वर्णन

म राज्य बैठे त्रयलोका । हर्षित भयउ गयउ सब शोका ॥
र न कर काहुसन कोई । राम-प्रताप विषमता खोई ॥

वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग ॥

हिक दैविक भौतिक तापा । राम-राज्य नहिं काहुहि व्यापा ॥
ब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं सुधर्म निरत श्रुतिनीती ॥
रिउ चरण धर्म्म जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं ॥
म भक्ति रत नर अरु नारी । सकल परमगतिके अधिकारी ॥
ल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुन्दर सब निरुज शरीरा ॥
हिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लक्षणहीना ॥
ब निर्दम्भ धर्म्म-रति धरणी । नर अरु नारि चतुर शुभकरणी ॥
ब गुणज्ञ सब पण्डित ज्ञानी । सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

राम-राज्य विहँगेश सुनु, सचराचर जगमाहिं ।
काल कर्म स्वभाव गुण, कृत दुख काहुहिं नाहिं ॥

म-राज्य कर सुख सम्पदा । बरणि न सकहिं फणीश शारदा ॥
ब उदार सब पर-उपकारी । द्विज-सेवक सब नर अरु नारी ॥
क-नारि-व्रत-रत नर झारी । ते मन बच क्रम पति-हितकारी ॥

दण्ड यतिनकर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहिं मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्रके राज ॥

लहिं फलहिं सदा तरु कानन । रहहिं एकसंग गज पंचानन ॥

खग मृग वैर सहज बिसराई । सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नानावृन्दा । अभय चरहिं वन करहिं अनन्दा ॥
शीतल सुरभि पवन वह मन्दा । गुंजत अलि ले चलु मकरन्दा ॥
लता विटप मांगे फल द्रवहीं । मन भावते धेनु पय स्रवहीं ॥
शसि-सपन्न सदा रह धरणी । त्रेता भै सतयुगकी करणी ॥
प्रगटे गिरि नाना मणि खानी । जगदातमा भूप पहिचानी ॥
सरिता सकल वहैं वर वारी । शीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
सागर निज मर्य्यादा रहहीं । डारहिं रत्न तटनि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दश दिशा विभागा ॥

विधु महि पूर चियूषन, रवितप जेतनै काज ।
मांगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्रके राज ॥

कोटिन वाजपेय प्रभु कीन्हें । अमित दान विप्रन कहं दीन्हें ॥
सेवहिं सानुकूल सब भाई । रामचरण-रति प्रीति सुहाई ॥
हर्षित रहहिं नगरके लोगा । करहिं सकल सुर-दुर्लभ-भोगा ॥
अह निशि विधिहि मनावत रहहीं । श्रीरघुवीर—चरण रति चहहीं ॥
दुइ सुत सुन्दर सीता जाये । लव कुश वेद-पुराणन गाये ॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे । भये रूप-गुण-शील-घनेरे ॥

उत्तरदिशि सरयू वहै, निर्मल जल गम्भीर ।
वांधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर ॥

दूर फ़राक रुचिर सो घाटा । जहं जल पियहिं वाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहां न पुरुष करहिं अस्नाना ॥
राजघाट सबही विधि सुन्दर । मज्जहिं तहां वरण चारिउ नर ॥

तीर देवनके मन्दिर । चहुंदिशि तिहिके उपवन सुन्दर ॥
कहुं सरिता-तीर-निवासी । बसहिं ज्ञान-रत मुनि संन्यासी ॥
तहँ नर रघुपति-गुण गावहिं । बैठि परस्पर इहै सिखावहिं ॥
दु प्रणतप्रतिपालक रामहिं । शोभा--शीलरूप--गुण---धामहिं ॥
ज-विलोचन श्यामल-गातहिं । पलक-नयन इव सेवक-त्रातहिं ॥
-शर रुचिर-चाप-तूणीरहिं । सन्त-कंज-वन-रवि रण-धीरहिं ॥
ल-कराल-व्याल-खगराजहिं । नमत राम अकाम ममता जहिं ॥

रामप्रताप-रविसे सुख और दुख

ते राम प्रताप-खगेशा । उदित भयउ अति प्रवल दिनेशा ॥
र प्रकाश रहेउ तिहुं लोका । वहुतन सुख वहुतन मन शोका ॥
नहिं शोक तेहि कहौं वखानी । प्रथम अविद्या-निशा सिरानी ॥
उलूक जहं तहां लुकाने । काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥
विध कर्म गुण काल सुभाऊ । ये चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
सर-मान-मोह-मद चोरा । इनकहं सुख नहिं कवनिहु ओरा ॥
-तड़ाग—ज्ञान—विज्ञाना । ये पंकज निकसे विधि नाना ॥
सन्तोष विराग विवेका । विगत शोक भे कोक अनेका ॥

यह प्रताप-रवि जासु उर, जब प्रभु करहिं प्रकाश ।
पाछिल बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नाश ॥

तन सहित राम एक वारा । संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
नि समय सनकादिक आये । तेज पुंज गुण शील सुहाये ॥
र गहि प्रभु मुनिवर बैठारे । परम मनोहर वचन उचारे ॥

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीशा। तुम्हरे दरश जाहिं अघ खीशा॥
बड़े भाग्य पाइय सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहि भव-भंगा॥
सन्त-संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्-ग्रन्थ॥
सुनि प्रभु वचन हर्षि मुनिचारी। पुलकगात अस्तुति अनुसारी॥

सनकादि कृत स्तुति

जय भगवन्त अनन्त अनामय। अनघ अनेक एक करुणामय॥
जय निर्गुण जय जय गुण-सागर। सुखनिधान तिहुंलोक-उजागर॥
जय इन्दिरारमण जय भूधर। अनुपम अज अनादि शोभाकर॥
ज्ञाननिधान अमान मानप्रद। पावन सुयश पुराण वेद वद॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता-भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥
सर्व सर्वगत सर्व उरालय। बसहु सदा हमकहँ प्रतिपालय॥
द्वंद्व--विपति---भवफन्द---विभंजन। हृद वसु राम काम-मद-गंजन॥
परमानन्द कृपायनन, तुम परि-पूरण-काम।
प्रेम-भक्ति अनपावनी, देहु हमें श्रीराम॥
देहु भक्ति रघुपति अनपावनि। त्रिविध ताप भव दाप नसावनि॥
प्रणत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न प्रभु दीजै यह वरु॥
भव-बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवक सुलभ सकल सुखदायक॥
मन-सम्भव दारुण दुख दारय। दीनबन्धु समता विस्तारय॥
आश–त्रास--ईर्षादि –निवारक। विनय-विवेक-विरति-विस्तारक॥
भूप--मौलि--मणि-मण्डन--धरणी। देहु भक्ति संसृति सर-तरणी॥
मुनि मन मानस-हंस निरंतर। चरणकमल वन्दित अज शंकर॥

रघुकुलकेतु सेतु-श्रुति-रक्षक । काल-कर्म-स्वभाव-गुण—भक्षक ॥
तारण-तरण हरण-सब दूषण । तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन–भूषण ॥

वार वार अस्तुति करि, प्रेम सहित शिर नाइ ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट वर पाइ ॥

सनकादिक विधिलोक सिधाये । भ्रातन रामचरण शिर नाये ॥
पूंछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं । चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥
अन्तर्यामी प्रभु सब जाना । पूंछत कहा कहहु हनुमाना ॥
जोरि पाणि तब कह हनुमन्ता । सुनिये दीनबन्धु भगवन्ता ॥
नाथ भरत कछु पूंछन चहहीं । प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं ॥
तुम जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहिं मोहिं न कछुक दुराऊ ॥
सुनि प्रभु-वचन भरत गहि चरणा । सुनिय नाथ प्रणतारित-हरणा ॥
संतनकी महिमा रघुराई । वहु विधि वेद पुराणन गाई ॥
सुना चहौं प्रभु तिन्हकर लक्षण । कृपासिन्धु गुण ज्ञान विचक्षण ॥
सन्त असन्त भेद बिलगाई । प्रणतपाल मोहिं कहिय बुझाई ॥

सन्त और असन्तों के लक्षण

सन्तनके लक्षण सुनु भ्राता । अगणित श्रुतिपुराण विख्याता ॥
सन्त असन्तको अस करणी । जिमि कुठार चन्दन आचरणी ॥
काटे परसु मलय सुनु भाई । निज गुण देइ सुगन्ध बसाई ॥

ताते सुर-शीशन चढ़त, जगवल्लभ श्रीखण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु बदन यह दण्ड ॥

विषयअलंपट शीलगुणाकर । परदुख दुख सुख सुख देखेपर ॥
सम अभूतरिपु विमद विरागी । लोभामर्ष हर्ष-भय—त्यागी ॥

कोमलचित दीनन पर दाया । मन-वच-क्रम-मम भक्त अमाया॥
सवहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्राणसम मम ते प्राणी॥
विगतकाम मम नाम-परायन । शान्त विरक्त विदित मुदितायन॥
शीतलता सु सरलता मैत्री । द्विजपद प्रेम धर्म जनयित्री॥
ये सब लक्षण बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर॥
शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूं नहिं बोलहिं॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज ।
ते सज्जन मम प्राणप्रिय, गुणमन्दिर सुखपुंज ॥

सुनहु असन्तन केर स्वभाऊ । भूलेहु संगति करिय न काऊ॥
तिन कर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहिं घालै हरहाई॥
खलन-हृदय अतिताप बिशेषी । जरहिं सदा पर-सम्पति देषी॥
जहं कहुं निन्दा सुनहिं पराई । हर्षहिं मनहुं परी निधि पाई॥
काम—क्रोध—मदलोभ—परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
वैर अकारण सब काहूसों । जोकर हित अनहित ताहूसों॥
झूठै लेना झूठै देना । झूठै भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥

परद्रोही परदाररत, परधन पर-अपवाद ।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥

लोभै ओढ़न लोभै डासन । शिश्नोदरपर यमपुरत्रास न॥
काहूकी जो सुनहिं वड़ाई । श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहूकी देखहिं विपती । सुखी होहिं मानहुं जग नृपती॥
स्वारथरत परिवारविरोधी । लम्पट-काम--लोभ—अतिक्रोधी॥

मात पिता गुरु विप्र न मानहिं । आप गये अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहवश द्रोह परावा । सतसंगति हरिभक्ति न भावा ॥
अवगुण-सिन्धु मन्दमति कामी । वेद-विदूषक परधन-स्वामी ॥
विप्रद्रोह परद्रोह विशेषी । दम्भ कपट जिय धरे सुवेषी ॥

ऐसे अधम मनुज खल, कृतयुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहैं कलियुग माहिं ॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्णय सकल पुराण वेदकर । कहेउं तात जानहिं कोबिदनर ॥
नर शरीर धरि जो परिपीरा । करहिं ते सहहिं महा भवभीरा ॥
करहिं मोहवश नर अघ नाना । स्वारथरत परलोक नसाना ॥
कालरूप मैं तिन कहँ ताता । शुभ अरु अशुभ कर्म फलदाता ॥
अस विचारि जो परम सयाने । भजहिं मोहिं संसृत दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म शुभाशुभ-दायक । भजैं मोहिं सुर नर मुनिनायक ॥
सन्त असन्तनके गुण भाखे । ते न परहिं भय जिन लखि राखे ॥

सुनहु तात मायाकृत, गुण अरु दोष अनेक ।
गुण यह उभय न देखिये, देखिय सो अविवेक ॥

श्रीमुखवचन सुनत सब भाई । हर्ष प्रेम नहिं हृदय समाई ॥
करहिं विनय अति बारहिं बारा । हनूमान हिय हर्ष अपारा ॥
सुनि गुणगान समाधि विसारी । सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

जीवनमुक्त ब्रह्मपर, चरित सुनहिं तजि ध्यान ।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिनके हृदय पषान ॥

एक बार रघुनाथ बुलाये । गुरु द्विज सब पुरवासी आये ॥

बैठे गुरु द्विज़वर मुनि सज्जन । बोले वचन–भक्त भय-भंजन॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहौं न कछु ममता उर आनी॥
जो अनीत कछु भाषौं भाई । तो मोहिं बरजेहु भय बिसराई॥

मानुष तनुका कर्त्तव्य

बड़े भाग्य मानुष-तनु पावा । सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा॥
साधन धाम मोक्षकर द्वारा । पाइ न जेइ परलोक संवारा॥
सो परत्र दुख पावई, शिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहिं कर्म्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीं । पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं॥
ताहि कबहुं भल कहै न कोई । गुंजा गहै परसमणि खोई॥
आकर चारि लाख चौरासी । योनिन भ्रमत जीव अविनासी॥
फिरत सदा मायाके प्रेरे । काल कर्म स्वभाव गुण घेरे॥
कबहुंक करि करुना नर देही । देत ईश बिनु काम सनेही॥
नर तनु भववारिधि कहँ बेरे । संमुख मरुत अनुग्रह मेरे॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भवसागरहिं, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति, आतमहा गति जाइ॥
ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका । साधन कठिन न मन महं टेका॥
करत कष्ट बहु पावत कोऊ । भक्तिहीन प्रिय मोहिं न सोऊ॥
भक्ति स्वतन्त्र सकल सुखखानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुण्यपुंज बिनु मिलहिं न संता । सत संगति संसृति कर अंता॥

औरौ एक गुप्त मत, सबहिं कहौं कर जोरि॥
शंकरभजन विना नर, भक्ति न पावै मोरि॥

हु भक्ति-पथ कवन प्रयासा। योग न मख जप तप उपवासा॥
ल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई॥
र दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहा विश्वासा॥
हुत कहौं का कथा बढ़ाई। इहि आचरण वश्य मैं भाई॥
न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
ारम्भ अनिकेत अमानो। अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी॥
ति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा॥
क्तिपक्ष-हठ नहिं शठताई। दुष्ट कर्म सब दूरि बिहाई॥

मम गुणग्राम-नाम-रत, गत-ममता-मद-मोह॥
ताकर सुख सोइ जानै, परानन्द सन्दोह॥

ुनत सुधासम वचन रामके। सबन्हि गहे पद कृपाधामके॥
ज निज गृह गये आयसु पाई। वर्णत प्रभुकी गिरा सुहाई॥

उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथ रूप॥
ब्रह्म सच्चिदानन्द-घन, रघुनायक जहं भूप॥

रामभक्तिकी महिमा

क वार वसिष्ठ मुनि आये। जहां राम सुख धाम सुहाये॥
ति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि चरणोदक लीन्हा॥
ाम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिन्धु विनती एक मोरी॥
ेखि देखि आचरण तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा॥

छूटै मल कि मलहिके धोये । घृत कि पात्र कोउ वारि विलोये ॥
प्रेम भक्ति-जल बिनु रघुराई । अभ्यन्तर मल कबहु न जाई ॥
सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित । सोइ गुणज्ञ विज्ञान अखंडित ॥
दक्ष सकल लक्षण-युत सोई । जाके पद सरोज रति होई ॥

नाथ एक वर मांगौं, मोहिं कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभुपदकमल, कबहुं घटै जनि नेहु ॥

अस कहि मुनिवसिष्ट गृह आये । कृपासिन्धुके मन अति भाये ॥
हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिये सेवक-सुखदाता ॥
पुनि कृपालु पुर बाहेर गयऊ । गज रथ तुरंग मंगावत भयऊ ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिये उचित जिन्ह जिन्ह जो चाहे ॥
हरण सकल श्रम प्रभु सम पाई । गये जहां शीतल अमराई ॥
भरत दीन्ह निज वसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥
मारुतसुत मारुत तब करई । पुलकि गात लोचन जल भरई ॥
हनूमान समको बड़ भागी । नहिं कोउ रामचरण अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥

तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन ।
गावन लागे रामगुण, कीरति सदा नवीन ॥

मामवलोकय पंकजलोचन । कृपाविलोकनि शोचविमोचनि ॥
नीलतामरस स्याम कामअरि । हृदयकंज--मकरन्द-मधुप हरि ॥
जातुधान----वरूथ----बलभंजन । मुनि सज्जन रंजन अघगंजन ॥
भूसुरससि नववृन्द-बलाहक । असरनसरन दीन-जनग्राहक ॥
भुजबल विपुल भार महि खंडित । खरदूषण---विराध---वधपंडित ॥

नारि सुख रूप भूपवर । जय दसरथ-कुल-कुमुद-सुधाकर ॥
जस पुरान विदित निगमागम । गावंत सुर मुनि सन्त समागम ॥
अनीक बाली–मद— खंडन । सब विधि कुशल कोसलामंडन ॥
लिमल मथन नाम ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनतजन ॥

प्रेम सहित मुनि नारद, वर्णि राम गुणग्राम ॥
शोभा-सिन्धु हृदय धरि, गये जहां विधि धाम ॥

राम-कथाकी महिमा

रिजा सुनहु विशद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति यथा ॥
मचरित शत कोटि अपारा । श्रुति शारदा न वरणै पारा ॥
म अनन्त अनन्त गुनानी । जन्म कर्म अगणित नामानी ॥
सीकर-महिरज गनि जाहीं । रघुपतिचरित न वरणि सिराहीं ॥
मा कहेउ सो कथा सुहाई । जो भुसुंडि खगपतिहिं सुनाई ॥
कछुक राम गुन कहेंउ बखानी । अब का कहउ सो कहउ भवानी ॥
रिचरित्र मानस तुम गावा । सुनि मैं नाथ परम सुख पावा ॥
तुम जो कहा यह कथा सोहाई । काकभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥

विरति ज्ञान विज्ञान दृढ़, रामचरन-अतिनेह ।
वायस तनु रघुपतिभगत, मोहिं परम सन्देह ॥

रसहस्त्रमहं सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्मव्रत-धारी ॥
धर्मशील कोटिन महं कोई । विषय-विमुख—विरागरत होई ॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक-ज्ञान सुकृत कोउ लहई ॥
ज्ञानवन्त कोटिन महं कोई । जीवनमुक्त सुकृत कोइ होई ॥

तिन सहसन मह सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्म-निरत विज्ञानी ॥
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म-पर प्रानी ॥
सबते सो दुर्लभ सुर-राया। रामभक्ति-रत गत-मद-माया ॥
सो हरिभक्ति काक किमि पाई। विश्वनाथ मोहिं कहहु बुझाई ॥
गौरिगिरा सुनि सरल सुहाई। बोले शिव सादर सुख पाई ॥
गिरि सुमेरु उत्तर दिशि दूरी। नीलशैल एक सुन्दर भूरी ॥
तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। तासु नास कल्पान्त न होई ॥
मायाकृत गुण दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका ॥
रहैं व्यापि समस्त जगमाहीं। तेहि गिरि निकट कबहुं नहिं जाहीं ॥

गरुड़के मोहका कारण

अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काकपह खगकुल-केतू ॥
जब रघुनाथ कीन्ह रनक्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहिं व्रीड़ा ॥
इन्द्रजीत-पर आपु बंधावा। तब नारद मुनि गरुड़ पठावा ॥
बन्धन काटि गयउ उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा ॥
प्रभुबन्धन समुझत बहुभांती। करत विचार उरग-आराती ॥

भवबन्धनते छूटहीं, नर जपि जाकर नाम।
खर्व निसाचर बांधेउ, नाग पास सोइ राम ॥

नाना भांति मनहिं समुझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा ॥
व्याकुल गयउ देव ऋषिपाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं ॥
सुनि नारदहिं लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल रामकी माया ॥
जो ज्ञानिन्हकर चित अपहरई। बीर आई विमोहबस करई ॥

मोह. उपजा मल तोरे । मिटिहि न वेगि कहे. खग मोरे ॥
रानन पहं जाहु खगेसा । सोइ करेहु जो देहि निदेसा ॥
खगपति विरंचिपहं गयऊ । निज सन्देह सुनावत भयऊ ॥
तेय शंकर पहं जाहू । तात अनते पूंछहु जनि काहू ॥
हि मम पद सादर सिर नावा । पुनि आपन सन्देह सुनावा ॥
नि ताकर विनीत मृदु वानी । प्रेम सहित मैं कहेउं भवानी ॥
बहुकाल करिय सत्संगा । तव यह होइ मोह-भ्रमभंगा ॥
तर दिशि सुन्दर गिरि नीला । तहं रहे काक-भुसुंडि सुसीला ॥
म-कथा सोइ कहै निरन्तर । सादर सुनहिं विविध विहंगवर ॥
सुनहु तहं हरिगुन भूरी । होइहि मोहजनित दुख दूरी ॥
वत देखि सकल खगराजा । हर्षेउ वायस सहित समाजा ॥
हु तात जेहि कारन आयउं । सो सब भयउ दरस तव पायउं ॥
श्रीराम-कथा अति पावनि । सदा सुखद दुख-पुंज-नसावनि ॥
दर तात सुनावहु मोहीं । बार बार विनवौं प्रभु तोहीं ॥
उ तासु मन परम उछाहा । कहै लाग रघुपति-गुनगाहा ॥

गयउ मोह सन्देह, सुनेउं सकल रघुपति-चरित ।
भयउ रामपद नेह, तव प्रसाद वायस-तिलक ॥

मोह-लोभ-मद-काम आदिकी प्रबलता

म निज मोह कहा खगसाईं । सो नहिं कछु आश्चय गोसाईं ॥
रद शिव विरंचि सनकादी । जे मुनि-नायक आतमवादी ॥

बिनु सत्संग न हरि-कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥

मिलहिं न रघुपति विनुअनुरागा। किये योग-जप-ज्ञान-विरागा॥
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराही। केहिके हृदय क्रोध नहिं दाहा॥

ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुण-आगार।
केहिके लोभ-विडंबना, कीन्ह न यह संसार॥
श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगनयनीके नयनशर, को अस लागु न जाहि॥

गुणकृत सन्निपात नहि केही। को न मान मद व्यापेउ जेही॥
यौवनजरु केहि नहिं बहकावा। ममता केहिकर यश न नसावा॥
मत्सर काहि कलंक न लावा। काहि न शोक समीर डोलावा॥
चिंता सांपिनि काहि न खाया। को जग जाहि न व्यापी माया॥
कीट मनोरथ दारु शरीरा। जेहि न लागु घुनको अस धीरा॥
सुत वित लोक ईषणा तीनी। केहि की मति इन्हकृत न मलीनी॥
यह सब मायाकर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा॥
शिव चतुरानन देखि डराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥

व्यापि रहेउ संसार महँ, मायाकटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाषण्ड॥
सो दासी रघुबीरकी, समुझै मिथ्या सोपि।
छुटै न राम-कृपा बिनु, नाथ कहौं प्रण रोपि॥

सो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू विलास खगराजा। नाच नटीइव सहित समाजा॥

सच्चिदानन्द घनश्यामा। अज विज्ञान-रूप गुणधामा॥
ापक ब्रह्म अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ एक भगवन्ता॥
ुण अदभ्र गिरा गोतीता। समदर्शी अनवद्य अजीता॥
ुण निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख—संदोहा॥
तिपार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी॥
ां मोहकर कारण नाहीं। रवि-सम्मुख तम कबहुं न जाहीं॥

भक्त--हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
जोइ जोइ भाव दिखावै, आपु न होइ न सोइ॥

मतिमलिन विषयवस कामी। प्रभुपर मोह धरहिं इमि स्वामी॥
न-दोष जा कहं जब होई। पीतवर्ण शशिकहं कह सोई॥
जेहि दिग्भ्रम होइ खगेशा। सो कह पश्चिम उगेउ दिनेशा॥
ारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोहवस आपुहिं लेखा॥
क भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्यावादी॥
ि विषयक अस मोह विहंगा। सपनेहु नहिं अज्ञान-प्रसंगा॥
ांवश मतिमंद अभागी। हृदय-यवनिका बहुविधि लागी॥
शठ हठवश संशय करहीं। निज अज्ञान रामपर धरहीं॥

काम-क्रोध-मद-लोभरत, गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तमकूप॥
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन न जानै कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि-मन भ्रम होइ॥

राम अभिमान-नाशक हैं

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन-अभिमान न राखैं काऊ ॥
संसृति-मूल शूलप्रद नाना । सकल शोकदायक अभिमाना ॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक-पर ममता अति भूरी ॥
जिमि शिशुतनु व्रण होइ गोसाईं । मातु चिराव कठिनकी नाईं ॥

यदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर ।
व्याधि-नाश-हित जननी, गनै न सो शिशुपीर ॥
तिमि रघुपति निज दासकर, हरहिं मान हित-लागि ।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥

राम-कृपा आपन जड़ताई । कहेउँ खगेस सुनहु मन लाई ॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं । भक्तहेतु लीला बहु करहीं ॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊं । बाल-चरित विलोकि हर्षाऊं ॥

प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहिं मोह ।
कवन चरित्र करत प्रभु, चितानन्द--सन्दोह ॥

इतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित व्यापी माया ॥

ज्ञान और अज्ञान या माया

ज्ञान अखण्ड एक सीतावर । मायावश्य जीव सचराचर ॥
जो सबके रह ज्ञान एकरस । ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥
मायावश्य जीव अभिमानी । ईशवश्य माया गुणखानी ॥
परवश जीव स्ववश भगवन्ता । जीव अनेक एक श्रीकन्ता ॥
द्विविध भेद यद्यपि कृतमाया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

रामचन्द्रके भजन बिनु, जो चहे पदनिर्वान।
ज्ञानवन्त अपि सोपि नर, पशु विनु पूछ विषान॥
राकापति षोड़श उगहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन दव लाइये, रवि विनु राति न जाय॥

ऐसे विनु हरिभजन खगेशा। मिटै न जीवन केर कलेशा॥
हरि-सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित तेहिं व्यापै विद्या॥
ताते नाश न होइ दासकर। भेद भक्ति बाढ़ै विहंगवर॥
भ्रमते चकित राम मोहिं देषा। विहँसे सो सुनु चरित विशेषा॥
जानु पानि धाये मोहिं धरना। स्यामलगात अरुन कर चरना॥

ब्रह्मलोक लग गयेउं मैं, चितयउं पाछ उड़ात।
युग अंगुल कर बीच रह, राम भुजहिं मोहिं तात॥
सप्तावरन भेद करि, जहं लगि गति रहि मोरि।
गयउं तहां प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउं बहीरि॥

मूंदेउं नयन त्रसित जब भयऊं। पुनि चितवत कोशलपुर गयऊं॥
मोहिं विलोकि राम मुसकाहीं। विहंसत तुरत गयउं मुखमाहीं॥

विराटरूपका वर्णन

उदर मांझ सुन अंडजराया। देखेउं बहु ब्रह्माण्ड-निकाया॥
अति विचित्र तहं लोक अनेका। रचना अमित एक ते एका॥
कोटिन चतुरानन गौरीशा। अगणित उड़गण रवि रजनीशा॥
अगणित लोकपाल यम काला। अगणित भूधर भूमि विशाला॥
सागर सरि सर विपिन अपारा। नाना भांति सृष्टि-विस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूं न समाय।
अस अद्भुत तहं देखेउं, बरनि कवन विधि जाय॥
एक एक ब्रह्माण्ड महं, रहेउं वर्ष शत एक।
यहि विधि मैं देखत फिरेउं, अण्डकटाह अनेक॥

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु शिव मनु दिशित्राता॥
नर गन्धर्व भूत बैताला। किन्नर निशिचर पशु खग व्याला॥
देव दनुज गण नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भांती॥
महिसरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहं आनहि आना॥
अंडकोश प्रति प्रति निजरूपा। देखेउं जिनिस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निहारी। सरयू भिन्न भिन्न नर नारी॥
दशरथ कौशल्यादिक माता। विविध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम--अवतारा। देखेउं बाल विनोद अपारा॥

भिन्न भिन्न सब देखेउं, अति विचित्र हरियान।
अगणित भुवन फिरेउं मैं, राम न देखा आन॥
सोइ शिशुपन सोइ शोभा, सोइ कृपालु रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरेउं, प्रेरित मोह समीर॥

भ्रमत मोहिं ब्रह्माण्ड अनेका। बीते मनहु कल्पशत एका॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउं। तहँ पुनि रहि कछु काल गवायउं॥
निज प्रभुजन्म अवध सुनि पायउं। निर्भर प्रेम हर्ष उठि धायउं॥
देखेउं जन्म महोत्सव जाई। जेहि विधि प्रथम कहा मैं गाई॥
राम-उदर देखेउं जगनाना। देखत बनै न जात बखाना॥
तहं पुनि देखेउं राम सुजाना। मायापति कृपालु भगवाना॥

रौं बिचारँ बहोरि बहोरी। मोह कलित व्यापित मति भोरी॥
भय घरी महं मैं सब देखा। भयउ श्रमित मन मोह बिशेषा॥

देखि कृपालु विकल मोहिं, विहंसे तब रघुवीर।
विहंसतही मुख बाहर, आयउं सुनु मतिधीर॥
सोइ लरिकाई मोहिंसन, लगे करन पुनि राम।
कोटि भांति समुझावौं, मन न लहै विश्राम॥

खि चरित इह सो प्रभुताई। समुझत देह-दशा बिसराई॥
रणि परेउं मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरतजन-त्राता॥
रमाकुल प्रभु मोहिं बिलोकी। निज माया-प्रभुता तब रोकी॥
र सरोज प्रभु मम शिर धरेऊ। दीनदयालु दुसह दुख हरेऊ॥
न्ह राम मोहिं बिगतविमोहा। सेवक सुखद कृपा-सन्दोहा॥
भुता प्रथम विचार विचारी। मनमहँ होइ हर्ष अति भारी॥
क्तवछलता प्रभुकै देषी। उपजा मन उर हर्ष विशेषी॥
न्हो बहु विधि विनय वहोरी। सजल नयन पुलकित करजोरी॥

सुनि सप्रेम मम वाणी, देखि दीन निजदास।
बचन सुखद गम्भीर मृदु, बोले रमानिवास॥
कागभुसुण्डी मांगु वर, अति प्रसन्न मोहिं जानि।
अणिमादिक सिधि अपर निधि, मोक्ष सकल सुखखानि॥

ान विवेक विरति विज्ञाना। मुनि दुर्लभ गति जो जगजाना॥
ाजु देउं सब संसय नाहीं। मांगु जो तोहिं भाव मनमाहीं॥
ुनि प्रभुवचन बहुत अनुरागेउं। मन अनुमान करन तब लागेउं॥
भु कह देन सकल सुख सही। भक्ति आपनी देन न कही॥

भक्तिहीन गुण सुख सब ऐसे। लवण विना बहु व्यंजन जैसे॥
भक्तिहीन सुख कवने काजा। अस विचारि बोलेउ खगराजा॥
जो प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू। मोपर करहु कृपा अरु नेहू॥
मन भावत वर मांगौं स्वामी। तुम उदार उर अन्तरयामी॥

अविरल भक्ति विशुद्ध तव, श्रुति पुराण जो गाव।
जेहि खोजत योगीश मुनि, प्रभु प्रताप कोउ पाव॥
भक्त-कल्पतरु प्रणतहित, कृपासिन्धु सुखधाम।
सोइ निज भक्ति मोहिं प्रभु, देहु दया करि राम॥

एवमस्तु कहि रघुकुल-नायक। बोले बचन परम सुखदायक॥
सुनु वायस तैं परम सयाना। काहे न मांगसि अस बरदाना॥
सब सुखखानि भक्ति तैं मांगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि यत्न नहिं लहहीं। जे जप योग अनल तनु दहहीं॥
रीझेउ तोरि देखि चतुराई। माँगेउ भक्ति मोहिं अति भाई॥
सुनु विहंग प्रसाद अब मोरे। सब शुभ गुण बसिहैं उर तोरे॥
भक्तिज्ञान—विज्ञान—विरागा। योग—चरित्र—रहस्य—विभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

माया सम्भव सकल भ्रम, अब नहिं ब्यापहिं तोहिं॥
जानेंसि ब्रह्म अनादि अज, अगुण गुणाकर मोहिं॥
मोहि भक्ति प्रिय सन्तत, अस बिचारि सुनु काग।
काय वचन मन मम चरण, करहु अचल अनुराग॥

अब सुनु परम विमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥
निज सिद्धान्त सुनावौं तोहीं। सुनु मन धरि सब तजि भजु मोहीं॥

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहिं भाये ॥
तिन्हमहँ द्विज द्विजमहं श्रुतिधारी। तिन्हमहं निगमधर्म—अनुसारी ॥
तिन्हमहं प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुंते अतिप्रिय विज्ञानी ॥
तिनते पुनि मोहिं प्रिय निजदासा। जेहिगति मोरि न दूसरि आसा ॥
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहिं सेवकसम प्रिय कोउ नाहीं ॥
भक्तिहीन विरंचि किन होई। सब जीवनमहँ अप्रिय सोई ॥
भक्तिवन्त अति नीचौ प्राणी। मोहिं परमप्रिय सुनु मम वाणी ॥

शुचि सुशील सेवक सुमति, कहु प्रिय काहि न लाग।
श्रुति पुराण कह नीति अस, सावधान सुनु काग ॥

एक पिताके विपुल कुमारा। होइं पृथक गुण--शील—अचारा ॥
कोउ पण्डित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवन्त शूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई। सबपर पितहिं प्रीति सम होई।
कोउ पितुभक्त वचन मन कर्म्मा। सपनेहु जान न दूसर धर्म्मा ॥
सो प्रिय सुत पितु प्राण समाना। यद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
इहिविधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते ॥
अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोरि बराबरि दाया ॥
तिनमहं जो परिहरि सब माया। भजहि मोहिं मन बच अरु काया ॥

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भजु कपट तजि, मोहिं परम प्रिय सोइ ॥
सत्य कहौं खग तोहिं, शुचि सेवक मम प्राणप्रिय।
अस विचारि भजु मोहि, परिहरि आश भरोस सब ॥

प्रभु-वचनामृत सुनि न अघाऊं । तनु पुलकित मन अति हर्षाऊं ॥
सो सुख जानैं मन अरु काना । नहिं रसना प्रति जाइ बखाना ॥
प्रभु-शोभा सुख जानत नयना । कहि किमि सकैं तिन्हैं नहि वयना ॥
रामकृपा विनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम--प्रभुताई ॥
जाने विनु न होइ परतीती । विनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति विना नहिं भक्ति दृढ़ाई । जिमि खगेश जलकी चिकनाई ॥

ज्ञान कैसे हो ?

विनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग विनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहहि विनु हरि भगति ॥
कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष विनु।
चलै कि जल विनु नाव, कोटि यतन पचि पचि मरै ॥

विनु सन्तोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ॥
राम-भजन विनु मिटहि न कामा । थल विहीन तरु कवहुं कि जामा ॥
विना ज्ञान की समता आवै । कोउ अवकाश कि नभ बिनु पावै ॥
श्रद्धा विना धर्म नहिं होई । विनु महि गन्ध कि पावै कोई ॥
विनु तप तेज कि करु विस्तारा । जल विनु रस कि होइ संसारा ॥
शील कि मिलु विनु बुध-सेवकाई । जिमि विनु तेज न रूप गुसाईं ॥
निजसुख विनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि विनु विश्वासा । विनु हरिभजन न भवभय-नासा ॥

विनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि विन द्रवहिं न राम।
रामकृपा विनु सपनेहु, मन कि लहै विश्राम ॥

अस बिचारि मति धीर, तजि कुतर्क संशय सकल।
भजहु राम रणधीर, करुणाकर सुन्दर सुखद॥

निज-मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु-प्रताप--महिमा खगराई॥
तुम्हैं आदि खग मशक प्रयन्ता। नभ उड़ाहिं पावहिं नहिं अन्ता॥
तिमि रघुपति-महिमा अवगाहा। तात कबहुं कोउ पाव कि थाहा॥
रामकाम शतकोटि सुभगतन। दुर्गमकोटि अमित-अरि--मर्दन॥
शक्र कोटिशत सरिस विलासा। नभ शतकोटि अमित अवकासा॥

मरुत कोटिशत विपुल बल, रवि शतकोटि प्रकास।
शशि शतकोटि सुशीतल, शमन सकल भवत्रास॥
काल कोटिशत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूम्रकेतु शतकोटि सम, दुराधर्ष भगवन्त॥

प्रभु अगाध शत कोटि पताला। शमन कोटिशत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि शत पावन। नाम अखिल--अघ--पुंजनसावन॥
हिमिगिरि कोटि अचल रघुवीरा। सिन्धु कोटिशत सरिस गँभीरा॥
कामधेनु शतकोटि समाना। सकल कामदायक भगवाना॥
शारद कोटि अमित चतुराई। विधि शतकोटि अमित निपुनाई॥
विष्णु कोटिशत पालनकर्ता। रुद्र कोटिशत सम संहर्ता॥
धनद कोटि शत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
धरा धरण शतकोटि अहीशा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीशा॥

निरवधि निरूपम रामसम नहिं आन निगमागम कहैं।
जिमि कोटिशत खद्योत रवि कहं कहत अति लघुता लहैं॥

इहि भांति निज निज मति विलास मुनीस हरिहिं बखानहीं।
प्रभु भाव-गाहक अति कृपालु सप्रेम सुनि सुख पावहीं॥
राम अमित गुणसागर, थाह कि पावै कोइ।
सन्तन सन जस कछु सुनेउं, तुमहिं सुनायउं सोइ॥
भाववश्य भगवान, सुखनिधान करुणाभवन।
तजि ममता-मद-मान, भजिय राम सीतारमण॥
सुनि भुसुण्डिके वचन सुहाये। हर्षित खगपति पंख फुलाये॥

गुरुकी महिमा

गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जो विरंचि शंकर सम होई॥
संशय सर्प ग्रसेउ मोहिं ताता। दुख दल हरि कुतर्क बहु-व्राता॥
तवप्रसाद मम मोह नसाना। रामरहस्य अनूपम जाना॥
ताहिं प्रशंसेउ विविध विधि, शीश नाइ करजोरि।
वचन सप्रेम विनीत मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि॥
प्रभु अपने अविवेक ते, पूंछा स्वामी तोहिं।
कृपासिन्धु सादर कहेहु, जानि दास निज मोहिं॥
तुम सर्वज्ञ तज्ञ तम—पारा। सुमति सुशील सरल आचारा॥
ज्ञानविरति विज्ञाननिवासा। रघुनायकके प्रिय तुम दासा॥
गरुड़गिरा सुनि हर्षेउ कागा। बोलेउ उमा सहित अनुरागा॥
जप तप मख शम दम व्रत दाना। विरति विवेक योग विज्ञाना॥
सब कर फल रघुपतिपद--प्रेमा। तेइ बिनु कोइ न पावै क्षेमा॥
इहि तनु राम भक्ति मैं पाई। ताते मोहिं ममता अधिकाई॥

हिते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई ॥

पन्नगारि असि नीति, श्रुति-संम्मत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज परमहित ॥
पाट कीटते होइ, ताते पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ, परम अपावन प्राणसम ॥
कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, गुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दम्भिन निज मति कल्प करि, प्रगट कीन्ह बहु पन्थ ॥
भये लोग सब मोहवश, लोभ ग्रसे शुभ कर्म।
सुनु हरियान ज्ञाननिधि, कहौं कछुक कलिधर्म ॥

कलियुगका वर्णन

र्ण धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति-विरोध-रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति-वंचक भूपप्रजाशन। कोउ नहिं मान निगम-अनुशासन ॥
थ सोइ जाकहं जो भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा ॥
थ्यारम्भ दम्भरत जोई। ताकहं सन्त कहै सब कोई ॥
ोइ सयान जो परधन-हारी। जो करु दम्भ सो बड़ आचारी ॥
ो बहु झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुणवन्त बखाना ॥
िराचार जो श्रुति-पथ-त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी ॥
ाके नख अरु जटा विशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

अशुभ वेष भूषण धरैं, भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं।
तेइ योगी तेइ सिद्धनर, पूजित कलियुग माहिं ॥
जे अपकारी-चार, हितनकर गौरव मान्यता।
मन-क्रम-वचन लवार, ते वक्ता कलिकाल महं ॥

नारिविवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नट मर्कटकी ना
सब नर काम-लोभ-रत क्रोधी । देव—विप्रगुरु—सन्त—विरोधी
गुणमन्दिर सुन्दर पति त्यागी । भजहिं नारि परपुरुष अभागी
सौभागिनी विभूषण—हीना । विधवनके श्रृंगार नवीना
गुरु शिष अंध बधिर कर लेखा । एक न सुनै एक नहिं देखा
हरै शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नरक महँ परई
मात पिता बालकन बुलावहिं । उदर भरै सोइ कर्म सिखावहिं

ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसरि बात।
कौड़ी कारण-मोहवश, करहिं विप्र-गुरु—घात ॥

परतिय-लम्पट कपट-सयाने । मोह—द्रोह—ममता—लपटाने
तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर । देखा मैं चरित्र कलियुग कर
आपु गये अरु आनहिं घालहिं । जो कोउ श्रुतिमारग प्रतिपालहिं
कल्प कल्प भरि एक एक नर्का । परहिं जे दूषहिं श्रुतिकर तर्का
नारि मुई गृह सम्पति नासी । मूड़ मुड़ाइ भये संन्यासी
ते विप्रन सन पांव पुजावहिं । उभयलोक निज हाथ नसावहिं
विप्र निरक्षर लोलुप कामी । निराचार शठ वृषली—स्वामी
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा

भये वर्णसंकर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहीं, भयरुज-शोक--वियोग ॥
श्रुति-सम्मत हरि-भक्तिपथ, संयुत ज्ञान विवेक।
ते न चलहिं नर मोहवश, कल्पहिं पंथ अनेक ॥

बहु धामसंवारहिं योगि यती, विषया हरि लीन्ह गइ विरती

तपसी धनवन्त दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न ज़ात कही ॥
कुलवंति निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरिहिं चोरगती ।
सुत मानहिं मात पिता तबलौं, अबलानन दीख नहीं जबलौं ॥
ससुरारि पियारि लगी जबते, रिपु रूप कुटुम्ब भये तबते ॥
नृप पापपरायण धर्म नहीं, करि दण्ड विदण्ड प्रजा तिनहीं ॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी, द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ।
नहिं मान पुराणहिं वेदहिं जो, हरि-सेवक संतसही कलि सो ॥
कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी, गुण दूषन वातन कोपि गुनी ।
कलि बारहिबार दुकाल परैं, बिन अन्न दुखी बहु लोग मरैं ॥

सुन खगेश कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाषण्ड ।
काम क्रोध लोभादि मद, व्यापि रहेउ ब्रह्मण्ड ।
तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख व्रत दान ॥
दैव न बरषै धरणि पर, बये न जामहिं धान ॥

अबला कच भूषण भूरि क्षुधा, धनहीन दुखी ममता बहुधा ।
सुख चाहहि मूढ़ न धर्मरता, मरि थोरि कठोरित कोमलता ॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं, अभिमान विरोध अकारणही ।
लघु जीवन संवत पंचदसा, कल्पांत न नाश गुमान असा ॥
कलिकाल बिहाल किये मनुजा, नहि मानत कोउ अनुजातनुजा
नहि तोष बिचारन शीतलता, सब जाति कुजाति भये मंगता ॥
इरषा परुषा छल लोलुपता, भरि पूरि रही समता विगता ।
सब लोग वियोग विशोक हये, वर्णाश्रमधर्म अचार गये ॥
दम दान दयानहिं जान पनी, जड़ता परवंचकता सो घनी ।

तनु पोषक नारि नरा सगरे, पर-निंदक जे जगमें बगरे ॥

सुनु व्यालारि करालकलि, मल-अवगुण-आगार।
गुणहु बहुत कलिकाल कर, विनु प्रयास निस्तार॥
कृतयुग त्रेता द्वापरहु, पूजा मख अरु योग।
जो गति होइ सो कलिहि हरि, नाम ते पावहिं लोग॥

कलियुग योग यज्ञ नहिं ज्ञाना। एक अधार राम--गुण--गाना॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुण्य होइ, नहिं पापा॥

कलियुगसम युग आन नहिं, जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुणगण विमल, भवतर विनहि प्रयास॥
प्रगट चारि पद धर्मके, कलि महं एक प्रधान।
येन केन विधि दीन्हे, दान करै कल्यान॥

कृतयुग धर्म होहि सब केरे। हृदय राम मायाके प्रेरे॥
शुद्ध सत्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मनजाना॥
सत्व बहुत कछु रजरति-कर्मा। सब विधि शुभ त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज सत्व स्वल्प कछु तामस। द्वापर धर्म हर्ष भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुण थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुं ओरा॥
बुध युग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रतधर्म कराहीं॥
काल कर्म नहि व्यापहिं ताहीं। रघुपतिचरण प्रीति अति जाहीं॥
नटकृत कपट विकट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापै माया॥

हरिमाया कृत दोष गुण, विनु हरिभजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस विचारि मनमाहिं॥
तेहि कलिकाल वर्ष बहु, बसेउ अवध विहंगेश।
परेउ दुकाल विपत्तिवश, तब मै गयउ विदेश॥

काकभुशुण्डीकी कथा

यउं उजैन सुनहु उरगारी । दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥
ये काल कछु सम्पति पाई । तहं पुनि करौं शम्भु-सेवकाई ॥
प्र एक वैदिक शिवपूजा । करै सदा तेहि काज न दूजा ॥
रमसाधु परमारथविन्दक । शम्भुउपासक नहिं हरिनिन्दक ॥
वौं मैं तेहिं कपटसमेता । द्विज दयालु अति नीतिनिकेता ॥
हिर नम्र देखि मोहिं सांई । विप्र पढ़ाव पुत्रकी नांई ॥
मुमंत्र मोहिं द्विजवर दीन्हा । शुभ उपदेश विविध विधि कीन्हा ॥
पौं मंत्र शिवमन्दिर जाई । हृदय दम्भ अहमिति अधिकाई ॥

गुरु नित मोहिं प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम।
मोहिं उपजै अति क्रोध, दम्भिहिं नीति कि भावई ॥

क वार गुरु लीन्ह वुलाई । मोहिं नीति बहु भांति सिखाई ॥
वसेवा कर फल सुत सोई । अविरल भक्ति रामपद होई ॥
महिं भजहिं तात शिव धाता । नर पामर कर केतिक वाता ॥
सु चरण शिव अज अनुरागी । तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥
कहं हरिसेवक गुरु कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
ति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहिं सिखाव सुबोधा ॥
हितं नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा ॥
म अनलसम्भव सुनु भाई । तेहि वुझाव घन पदवी पाई ॥
मग परी निरादर रहई । सबकर पद-प्रहार नित सहई ॥
त उड़ाइ प्रथम तेहि भरई । पुनि नृप-नयन-किरीटन्ह परई ॥

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा । बुध न करहिं अधमन कर संगा ॥
कवि कोविद गावहिं अस नीती । खलसन कलह न भलसन प्रीती ॥
उदासीन बरु रहिय गुसाँई । खल परिहरिय श्वानकी नाईं ॥
मैं खग हृदय कपट कुटिलाई । गुरु हित कहै न मोहिं सुहाई ॥

एक बार हर-मन्दिर, जपत रहेउं शिव-नाम ।
गुरु आये अभिमान ते, उठि नहिं कीन्ह प्रणाम ॥
सो दयालु नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेश ।
अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सकेउ महेश ॥

मन्दिर मांझ भई नभ वानी । रे हतभाग्य अधम अभिमानी ॥
यद्यपि तव गुरु स्वल्प न क्रोधा । अति कृपालु चित सम्यक बोधा ॥
तदपि शाप देहौं शठ तोहीं । नीति-विरोध सोहात न मोहीं ॥
जो नहिं करौं दण्ड शठ तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुति-मारग मोरा ॥
जो शठ गुरुसन ईर्षा करहीं । रौरव नरक कल्पशत परहीं ॥
त्रियक योनि पुनि धरहिं शरीरा । अयुत जन्मभरि पावहिं पीरा ॥
बैठि रहेसि अजगर इव पापी । होसि सर्प खलमलमति व्यापी ॥
महा विटप कोटर महं जाई । रहु रे अधम अधोगति पाई ॥

हाहाकार कीन्ह गुरु, सुनि दारुण शिव शाप ।
कंपित मोहिं विलोकि अति, उर उपजा परिताप ॥
करि दण्डवत सप्रेम गुरु, शिव-सन्मुख कर जोरि ।
विनय करत गद्गद गिरा, समुझि घोर गति मोरि ॥

नमामीशमीशान निर्वाणरूपम् । विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम् । चिदाकारशमाकाशवासंभजेऽहम् ॥

हे मुक्ति स्वरूप समर्थ, व्यापक, ब्रह्म और वेदरूप महादेव ! मैं आपको नमस्कार करता हूं । हे जन्मरहित, निर्गुण, संकल्प विकल्परहित, चेष्टाहीन, ज्ञान स्वरूप, सूक्ष्म और स्थूल आकाशमें बसनेवाले मैं आपका भजन करता हूं ।

निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयम्। गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम्।
करालं महाकालकालं कृपालुम्। गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ॥२॥
तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरम्। मनोभूतकोटिप्रभासीशरीरम्।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगङ्गा। लसद्भालबालेंदु कंठे भुजंगा ॥३॥
चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालम्। प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम्।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालम्। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥४॥
प्रचण्डं प्रकष्टं प्रगल्भं परेशम्। अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशम्।
त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्। भजेऽहम् भवानीपतिं भावगम्यम् ।५।
कलातीतकल्याणकल्पान्तकारिन्। सदासज्जनानन्ददाता पुरारिन्।
चिदानन्दसन्दोहमोहापहारिन्। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारिन् ॥६॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दम्। भजन्तीह लोके परे वा नराणम्।
नतावत्सुखं शान्ति-सन्तापनाशः। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासिन् ॥७

निराकार और ओंकारके मूल तथा जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिसे परे, वाणी
ज्ञानेन्द्रियोंसे दूर, कैलासपति, भयंकर, महाकालके भी काल, दयालु, गुणोंको
खान, और संसारसे दूर शंकर मैं आपको प्रणाम करता हूं।

हिमालयके समान श्वेत, गम्भीर स्वभाववाले, कोटि कामदेवोंके सदृश सुन्दर
शरीरवाले, जटाजूटमें लहरें मारती हुई सुन्दर गंगाजीको धारण किये हुए,
जिनके ललाटपर दूजका चंद्रमा शोभायमान है और जो कण्ठमें सर्प लपेटे हुए हैं,
और कानोंमें चंचल कुण्डल पहने हुए हैं जिनके नेत्र उज्वल और विशाल हैं, जिनका
प्रसन्न मुख है और जो दयालु हैं बाघकी खाल जिनका वस्त्र है और, जो मुण्डों
की माला पहने हुए हैं, ऐसे सबके नाथ प्यारे शंकरको मैं भजता हूं।

न जानामि योगं जपं नैव पूजाम्। नतोऽहम् सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्
जराजन्म दुःखौघतातप्यमानम्। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठान्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

सुनि विनती सर्वज्ञ शिव, देखि विप्र अनुरागु।
पुनि मंन्दिर नभबानि भइ, हे द्विज अब वर मांगु॥
जो प्रसन्न प्रभु मोहिंपर, नाथ दीनपर नेहु।
निजपदभक्ति देहु प्रभु, पुनि दूसर वर देहु॥
तव मायावस जीव जड़, संतत फिरै भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिन्धु भगवान॥

उग्र, श्रेष्ठ, सर्वव्यापक, ईश्वर, अखण्ड, अजन्मा, कोटि सूर्यके समान प्रकाश वाले, दैहिक, भौतिक और दैविक तीनों पीड़ाओंके नाशक त्रिशूलधारी भक्तसे मिलनेवाले भवानीपतिका मैं भजन करता हूं। हे कलाओंसे दूर कल्याण और कल्पान्तके करनेवाले सदा सज्जनोंको आनन्द देनेवाले त्रिपुरासुरके शत्रु, ज्ञानानन्द के समूह तथा मोहके नाशक कामदेवके शत्रु आप प्रसन्न हूजिये। हे उमानाथ! जबतक आपके चरणकमलका भजन नहीं करता तब तक मनुष्य इस लोक या परलोकमें सुख शान्ति नहीं पाता और न सन्तापका नाश ही होता है, इसलिये हे सब प्राणियोंमें व्यापक प्रभु! आप प्रसन्न हूजिये। मैं योग जप पूजा कुछ नहीं जानता, परन्तु हे शंकर मैं आपको सदा प्रणाम करता हूं। हे प्रभु! बार बार जन्म और बुढ़ापेके दुःखसे संतप्त मुझे आप आपत्से बचाइये।

महादेवको प्रसन्न करनेके लिये ब्राह्मणका कहा हुआ यह रुद्राष्टक जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, उनपर शम्भु प्रसन्न होते हैं।

शंकर दीनदयालु अब, यहि पर होहु कृपालु ।
शापानुग्रह होहि जेहि, नाथ थोरही कालु ॥

हिकर होइ परम कल्याना । सोइ करहु अब कृपानिधाना ॥
प्रगिरा सुनि परहितसानी । एवमस्तु इति भइ नभ-बानी ॥

प्रेरितकाल सुविन्ध्य गिरि, जाइ भयउं मैं व्याल ।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउं गये कछु काल ॥
जो तनु धरौं तजौं पुनि, अनायास हरियान ।
जिमि नूतन पट पहिरिकै, नर परिहरै पुरान ॥

रम देह द्विजकर मैं पाई । सुरदुर्लभ पुरान-श्रुति–गाई ॥
हं जहं विपिन मुनीश्वर पावौं । आश्रम जाइ जाइ सिर नावौं ॥
झौं तिनहिं रामगुन-गाहा । कहौं सुनौं हर्षित खगनाहा ॥
नत फिरौं हरिगुनानुवादा । अव्याहतगति शंभुप्रसादा ॥
टी त्रिविध ईषना गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
मचरन—पंकज जब देखौं । तब निज जन्म सफल करि लेखौं ॥
हि पूछौं सो मुनि अस कहई । ईश्वर सर्वभूत-मय अहई ॥
र्गुन मत नहिं मोहिं सोहाई । सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई ॥

गुरुके वचन सुरति कर, रामचरन–मन लाग ।
रघुपति-जस गावत फिरौं, छिन छिन नव अनुराग ॥
मेरुसिखर वटछाया, मुनि लोमस आसीन ।
देखि चरन सिर नायउं, वचन कहेउं अति दीन ॥
सुनि मम वचन विनीत मृदु, मुनि कृपालु खगराज ।
मोहिं सादर पूछत भयउ, द्विज आयउ केहि काज ॥

तब मैं कहेउ कृपानिधि, तुम सर्वज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्म-आराधना, मोहिं कहहु भगवान॥

तब मुनीश रघुपति-गुनगाथा। कहेउ कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्म-ज्ञान-रत मुनि विज्ञानी। मोहिं परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म-उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥
मन-गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं तोहिं ताहि नहिं भेदा। वारिवीचि इव गावहिं वेदा॥
विविध भांति मोहिं मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा॥
पुनि मैं कहेउं नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥
रामभक्ति जल मम मन मीना। किमि विलगाइ मुनीस प्रवीना॥
सोइ उपदेश करहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥
भरि लोचन विलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा॥
पुनि पुनि कहि मुनि कथा अनूपा। खंडि सगुनमत अगुन निरूपा॥
तब मैं निर्गुनमत करि दूरी। सगुन निरूपौं करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रत्युत्तर मैं कीन्हा। मुनि उर भयउ क्रोधकरि चीन्हा॥
सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये। उपज क्रोध ज्ञानिहुके हिये॥
अति संघर्षन करै जो कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥

वार वार सकोप मुनि, करहिं निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं विविध अनुमान॥
क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावस प्रच्छन्न जड़, जीव कि ईश-समान॥

वहुं कि दुख सबकर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ॥
ामी पुनि कि रहै अकलंका । परद्रोही किमि होइ निसंका ॥
स कि रह द्विज अनहित कीन्हे । कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे ॥
ाहुहिं सुमति कि खलसंग जामी । सुभ मति पाव कि परतियगामी ॥
ज कि रहै नीति विनु जाने । अघ कि रहै हरिचरित वखाने ॥
व कि परहिं परमात्माविंदक । सुखी कि होहिं कबहुं परनिंदक ॥
वन जस कि पुन्य बिनु होई । विनु अघ अजस कि पावै कोई ॥
ाभ कि कछु हरिभक्ति समाना । जेहि गावहिं स्रुति-संत---पुराना ॥
ानि कि जग यहि सम कछु भाई । भजिय न रामहिं नर-तनु पाई ॥
घ कि विना तामस कछु आना । धर्म कि दयासरिस हरियाना ॥
हिविधि अमित युक्ति मन गुनेऊं । मुनि-उपदेश न सादर सुनेऊं ॥
नि पुनि सगुन पक्ष मैं रोपा । तब मुनि बोलेउ वचन सकोपा ॥
ढ़ परम सिख देउं न मानेसि । उत्तर प्रत्युत्तर बहु आनेसि ॥
त्य वचन विश्वास न करहीं । वायस इव सबहीसन डरहीं ॥
ठ सपक्ष तव हृदय विसाला । सपदि होहु पक्षी चंडाला ॥
ीन्ह साप मैं सीस चढ़ाई । नहिं कछु भय न दीनता आई ॥

तुरत भयउं मैं काग तब, पुनि मुनिपद शिर नाइ ।
सुमिरि राम रघुबंसमनि, हर्षित चलेउं उड़ाइ ॥
उमा जे रामचरनरत, विगत-काम--मद--क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं विरोध ॥

ुनु खगेस नहिं कछु ऋषिदूषन । उरप्रेरक, रघुवंश—विभूषन ॥
ृपासिन्धु मुनिमति करि भोरी । लीन्हो प्रेम—परीक्षा मोरी ॥

मन क्रम-वचन मोहिं जन जाना । मुनिमति पुनि फेरी भगवाना॥
ऋषि मम सहनसीलता देखी । रामचरन–विश्वास विशेखी॥
अति बिस्मय पुनि पुनि पछिताई । सादर मुनि मोहिं लीन्ह बुलाई॥
मम परतोष विविधविधि कीन्हा । हर्षित राममंत्र तब दीन्हा॥
बालकरूप रामकर ध्याना । कहेउ मोहिं मुनि कृपानिधाना॥
सुन्दर सुखद मोहिं अति भावा । सो प्रथमहिं मैं तुमहिं सुनावा॥
मुनि मोहिं कछुक कालतहँ राखा । राम–चरित मानस तब भाषा॥
सादर यह मोहिं कथा सुनाई । पुनि बोले मुनि गिरा सोहाई॥
रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभुप्रसाद तात मैं पावा॥
तोहिं निज भक्त राम कर जानी । ताते मैं सब कहेउ बखानी॥
रामभक्ति जिनके उर नाहीं । कबहुं न तात कहिय तिन्ह पाहीं॥
मुनि मोहि विविधभांति समुझावा। मैं सप्रेम मुनिपद शिर नावा॥
निजकर कमल परसि मम सीसा । हर्षित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
रामभक्ति अविरल उर तोरे । बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे॥

सदा रामप्रिय होव तुम, सुभगुन-भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ज्ञान-विराग-निधान॥
जेहि आश्रम तुम बसहु पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त।
व्यापहिं तहं न अविद्या, योजन एक पर्यंत॥

काल--कर्म--गुन–दोष--सुभाऊ । कछु दुख तुमहिं न व्यापिहि काऊ॥
राम-रहस्य ललित विधिनाना । गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥
बिनु स्रम तुम जानब सब-सोऊ । नित नव नेह रामपद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मनमाहीं । हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा । ब्रह्मगिरा भइ गगन गभीरा ॥
एवमस्तु तव बच मुनि ज्ञानी । यह मम भक्त कर्म-मन--बानी ॥
सुनि नभगिरा हर्ष मम भयऊ । प्रेममगन मन संसय गयऊ ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई । पदसरोज पुनि पुनि सिर नाई ॥
हर्ष सहित यहि आश्रम आयउँ । प्रभुप्रसाद दुर्लभ वर पायउँ ॥
इहाँ बसत मोहिं सुनु खगईसा । बीते कल्प सात अरु बीसा ॥
करौं सदा रघुपति-गुनगाना । सादर सुनहिं विहंग सुजाना ॥
जब जब अवधपुरी रघुबीरा । धरहिं भक्तहित मनुज शरीरा ॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊ । सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥
पुनि उर राखि रामसिसु-रूपा । इह आस्रम आवौं खगभूपा ॥
कथा सकल मैं तुमहिं सुनाई । कागदेह जेहि कारण पाई ॥

तातें यह तनु मोहिं प्रिय, भयउ रामपद नेह ।
निजप्रभु दर्शन पायउँ, गयउ सकल सन्देह ॥
भक्तिपक्ष हठ करि रहेउँ, दीन्ह महाऋषि शाप ।
मुनि दुर्लभ वर पायउँ, देखहु भजन-प्रताप ॥

जे असि भक्ति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान--हेतु स्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पयलागी ॥
सुनु खगेस हरिभक्ति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी । पैरि पार चाहत जड़ करनी ॥
सुनि भुसुण्डिके बचन भवानी । बोलेउ गरुड़ हर्षि मृदुबानी ॥
तव प्रसाद प्रभु मम उरमाहीं । संसय-सोक-मोह-भ्रम नाहीं ॥
सुनेउँ पुनीत रामगुन—ग्रामा । तुम्हरी कृपा लहेउँ विश्रामा ॥

ज्ञान और भक्ति

एक बात प्रभु पूंछौं तोहीं । कहहु बुझाय कृपानिधि मोहीं ॥
कहहिं संत-मुनि-वेद-पुराना । नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान-समाना ॥
सो मुनि तुमसन कहेउ गुसाईं । नहिं आदरेउ भक्तिकी नांई ॥
ज्ञानहिं भक्तिहिं अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारि वचन सुख माना । सादर बोलेउ काग सुजाना ॥
ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव-संभव-खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर । सावधान होइ सुनहु विहंगवर ॥
ज्ञान विराग योग विज्ञाना । ये सब पुरुष सुनहु हरियाना ॥
पुरुष-प्रताप प्रबल सब भांती । अवला अवल सहज जड़जाती ॥

पुरुष त्यागि सक नारि कहं, जो विरक्त मतिधीर ।
नतु कामी जो विषयवस, विमुख जे पद रघुबीर ॥
सोउ मुनि ज्ञाननिधान, मृगनयनी विधुमुख निरखि ।
विकल होहिं हरियान, नारि विष्णुमाया प्रगट ॥

इहां न पक्षपात कछु राखौं । वेद-पुरान-संत-मत भाखौं ॥
मोह न नारि नारिके रूपा । पन्नागिरि यह नीति अनूपा ॥
माया भक्ति सुनहु प्रभु दोऊ । नारिवर्ग जानै सब कोऊ ॥
पुनि रघुवीरहिं भक्ति पियारी । माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भक्तिहिं सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति रघुराया ॥
रामभक्ति निरुपम निरुपाधी । बसै जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि विलोकि माया सकुचाई । करि न सकै कछु निज प्रभुताई ॥

असि विचारि जो मुनि विज्ञानी । याचहिं भक्ति सकल गुनखानी ॥

यह रहस्य रघुनाथ कर, वेगि न जानै कोइ ।
जाने ते रघुपति कृपा, सपनेहुं मोह न होइ ॥
औरौ ज्ञान--भक्ति कर, भेद सुनहु परवीन ।
जो सुनि होहि रामपद, प्रीति सदा अवछीन ॥

जड़ चेतनकी गांठ कैसे सुळझे ?

ुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत वनै न जाइ वखानी ॥
श्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
ो माया वस भयउ गुसांई । वंध्यो कीर मर्कटकी नांई ॥
ड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई । यदपि मृषा छूटन कठिनई ॥
वते जीव भयउ संसारी । ग्रंथि न छूट न होइ सुखारी ॥
ुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
ीव हृदय तम मोह विशेषी । ग्रंथि छूट किमि परै न देषी ॥
स संयोग ईश जब करई । तवहुं कदाचित सो निरुअरई ॥
ात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जो हरिकृपा हृदय वस आई ॥
प व्रत संयम नियम अपारा । जो श्रुति कह सुभधर्म अचारा ॥
ोइ तृन हरित चरै जब गाई । भाववत्स सिसु पाइ पन्हाई ॥
ोइनि वृत्ति पात्र विस्वासा । निर्मल मन अहीर निजदासा ॥
रमधर्म-मय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम वनाई ॥
ोष मरुत तव क्षमा जुडावै । धृति सम जावन देइ जमावै ॥
दिता मथै विचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । विमल विराग सुभग सुपुनीता ॥

योग अग्नि करि प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत, ममतामल जरि जाइ ॥
तब विज्ञान निरूपिनी, बुद्धि विसद घृत पाइ ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ ॥

तीन अवस्था तीन गुन, तिहि कपासते काढ़ि ।
तूल तुरीय संवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥
यहि विधि लेसो दीप, तेजरासि विज्ञान मय ।
जातहि जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतमअनुभव सुख स्वप्रकासा । तब भवमूल—भेद—भ्रम नासा ॥
प्रबल अविद्याकर परिवारा । मोह आदि तम मिटै अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा । उरगृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया । विघ्न अनेक करहि तब माया ॥
ऋद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई । बुद्धिहिं लोभ देखावहिं जाई ॥
कल बल छल करि जाइ समीपा । अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥
होइ बुद्धि जो परम सयानी । तिन्हतन चितव न अनहित जानी ॥
जो तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥
इंद्रियद्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं विषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥
जब सो प्रभंजन उर गृह जाई । तबहि दीप—विज्ञान बुझाई ॥
ग्रंथि न छूटि मिटा स्वप्रकासा । बुद्धि बिकल भई विषय-बतासा ॥

द्रियसुरन्ह न ज्ञान सुहाई। विषय-भोगपर प्रीति सदाई॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि विधि दीप को बार बहोरी॥

तब फिर जीव विविध विधि, पावै संसृतिक्लेस।
हरिमाया अति दुस्तर, तरि न जाइ विहंगेस॥

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक॥

ज्ञानक पंथ कृपानकै धारा। परत खगेश न लागै बारा॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्वहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। संत-पुरान-निगम--आगम बद॥
रामभजन सोइ मुक्ति गुसांई। अन--इच्छित आवै बरिआई॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोक्षसुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरिभक्ति बिहाई॥
अस बिचारि हरिभक्ति सयाने। मुक्ति निरादरि भक्तिलुभाने॥
भक्ति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृतिमूल अविद्या—नासा॥
भोजन करिय तृप्तिहित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
अस हरिभक्ति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सुहाई॥

सेवकसेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु रामपद-पंकज, अस सिद्धान्त विचारि॥
जो चैतन कहं जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य॥

कहेउं ज्ञान सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भक्तिमनिकी प्रभुताई॥

ज्ञानसे भक्तिकी श्रेष्ठता

रामभक्ति चिंतामनि सुन्दर। बसै गरुड़ जाके उर,अन्तर॥

परम प्रकाश रूप दिन राती । नहिं कछु चहिय दिया-घृत-वाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभवात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रवल अविद्यातम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । वसै भक्तिमनि जेहि उर माहीं ॥
गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि विनु सुख पाव न कोई ॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी । जेहिके वस सब जीव दुखारी॥
रामभक्तिमनि उर वसु जाके । दुख लवलेस न सपनेहुं ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जगमाहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि यदपि प्रगट जग अहई । रामकृपा विनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइवे केरे । नर हतभाग्य देत भटभेरे॥
पावन पर्वत वेद पुराना । रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ज्ञान विराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजैं जे प्रानी । पाव भक्तिमनि सब सुखखानी॥
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा । रामते अधिक रामकर दासा॥
रामसिन्धु घनसज्जनधीरा । चंदनतरु- हरि संतसमीरा॥
सब कर फल हरिभक्ति सोहाई । सो विनु संत न काहुहिं पाई॥
अस बिचारि जोइ करु सत्संगा । रामभक्ति तेहिं सुलभ विहंगा॥

ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि ।
कथा सुधा मथि काढ़हीं, भक्ति मधुरता जाहि ॥
विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइय सो हरिभगत, देखु खगेस विचारि ॥

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ । जो कृपालु मोहि ऊपर भाऊ॥

गरुड़के सात प्रश्नों के उत्तर

नाथ मोहिं निज सेवक जानी । सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी ॥
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा । सबते दुर्लभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी । सो संपेक्षहिं कहहु विचारी ॥
संत असंत मर्म तुम जानहु । तिन कर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य श्रुति विदित विसाला । कहहु कवन अघ परम कराला ॥
मानसरोग कहहु समुझाई । तुम सर्वज्ञ कृपा अधिकाई ॥
तात सुनहु आदर अति प्रीती । मैं संक्षेप कहौं यह नीती ॥
नर तनु सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक--स्वर्ग—अपवर्ग—निसेनी । ज्ञान- विराग--भक्ति—सुख-देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न-जे नर। होइ विषयरत मन्द मन्दतर ॥
कंचन कांच वदल सठ लेहीं । करते डारि परसमनि देहीं ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं । संतमिलन सम सुख कछु नाहीं ॥
पर-उपकार वचन मन काया । संत सहज सुभाध खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । परदुख--हेतु असंत अभागी ॥
भूर्जतरू सम संत कृपाला । परहित सह नित विपति बिसाला ॥
सन इव खल परबंधन करई । खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई ॥
खल विनु स्वारथ पर-अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥
परसंपदा विनासि नसाहीं । जिमि कृषिहति हिम उपल विलाहीं ॥
दुष्ट उदय जग-आरति—हेतू । यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
संत उदय संतत सुखकारी । विस्वसुखी जिमि इंदु तमारी ॥

परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा। परनिंदा सम अघ न गरिसा॥
हरिगुरु—निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तनु सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमैं वायस सरीर धरि॥
सुर-श्रुति-निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदारत। मोह निसाप्रिय ज्ञानभानुगत॥
सबको निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥

मानस रोगों का वर्णन

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्हते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहिते पुनि उपजहिं बहु शूला॥
कामवात कफ लोभ अपारा। क्रोधपित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जो तीनिउ भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब शूल नामको जाना॥
ममता दादु कंडु ईर्षाई। हर्ष विषाद गहरु बहुताई॥
परसुख देखि जरनि सो छाई। कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलाई॥
अहंकार जो दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ॥
तृष्णा उदरवृद्धि अति भारी। त्रिविध ईषना तरुन तिजारी॥
युग विधिज्वर मत्सर अविवेका। कहं लगि कहौं कुरोग अनेका॥

एक व्याधिबस नर मरहिं, ये असाध्य बहु व्याधि।
संतत पीड़हिं जीवकहं, सो किमि लहहि समाधि॥
नेम धर्म आचार तप, ज्ञान यज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह करहिं, रुज न जाहिं हरियान॥

इहि विधि सकल जीव जग रोगी । सोक हर्ष भय प्रीति वियोगी ॥
मानसरोग कछुक मैं गाये । हैं सबके लखि बिरलन्ह पाये ॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी । नास न पावहिं जन परितापी ॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिन्ह हृदय का नर बापुरे ॥

रोगों की औषधि

रामकृपा नासहि सब रोगा । जो यहि भांति बनै संयोगा ॥
सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा । संयमग्रहण विषयकर आसा ॥
रघुपति-भक्ति सजीवनमूरी । अनोपान श्रद्धा अति भूरी ॥
इहि विधि भले कुरोग नसाहीं । नाहित जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिय तब मन विरुज गुसाँई । जब उर बलविराग अधिकाई ॥
सुमतिक्षुधा बाढ़ै नित नई । विषय आस दुर्बलता गई ॥
विमल ज्ञान जल पाय अन्हाई । तब रहु रामभक्ति उर छाई ॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म-विचारविसारद ॥
सब कर मत खगनायक एहा । करिय रामपद-पंकज नेहा ॥
श्रुति पुरान सद्ग्रंथ कहाहीं । रघुपतिभक्ति बिना सुख नाहीं ॥
कमठपीठ जामहिं वरु बारा । बंध्यासुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहिं नभ वरु बहुविधि फूला । जीव न लह सुख प्रभुप्रतिकूला ॥
तृष्णा जाइ वरु मृगजलपाना । वरु जामहि सससीस विषाना ॥
अंधकार वरु रविहिं नसावै । रामविमुख सुख जीव न पावै ॥
हिमते अनल प्रगट वरु होई । रामविमुख सुख पाव न कोई ॥

वारि मथे वरु होइ घृत, सिकताते वरु तेल ।
विनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

मसकहिं करहिं विरंचि प्रभु, अजहिं मसकते हीन।
अस विचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रवीन॥

कहेउं नाथ हरिचरित अनूपा। व्यास समास स्वमति अनुरूपा॥
श्रुतिसिद्धांत इहै उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी॥
प्रभु रघुपति तजि सेइय काही। मोहिंसे सठ पर ममता जाही॥
तुम विज्ञानरूप नहिं मोहा। कीन्ह नाथ मोपर अति छोहा॥
पूंछेहु रामकथा अति पावनि। सुकसनकादि संभुमन भावनि॥
सत्संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंडभरि एकौ बारा॥
देखु गरुड़ निज हृदय विचारी। मैं रघुबीर—भजन—अधिकारी॥
सकुनाधम सब भांति अपावन। प्रभु मोहिं कीन्ह विदित जगपावन॥

आजु धन्य मैं धन्य अति, यद्यपि सबविधि हीन।
निज जन जानि राम मोहिं, संत-समागम दीन॥
नाथ यथामति भाषेउं, राखेउं कछु नहिं गोइ।
चरितसिंधु रघुनाथकर, थाह कि पावै कोइ॥

सुमिरि रामके गुनगन नाना। पुनि पुनि हर्षि भुशुण्डि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥
शिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाव केहु सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं॥
साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ संन्यासी॥
योगीश्वर अरु तापस ज्ञानी। धर्मनिरत पंडित विज्ञानी॥
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गये मोसे अघनासी। होहिं सुद्ध नमामि अविनासी॥

जासु नाम भवभेषज, हरन—घोर—त्रयसूल।
सो कृपालु मोहिं तोहिं पर, सदा रहहिं अनुकूल॥
सुनि भुसुंडिके वचन वर, देखि रामपद-नेह।
बोलेउ प्रेमसहित गिरा, गरुड़ बिगतसंदेह॥

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भक्ति-रससानी॥
रामचरन नूतन रति भई। मायाजनित बिपति सब गई॥
मोह जलधि बोहित तुम भयऊ। मोकहं नाथ बिबिध सुख दयऊ॥
मोसन होइ न प्रत्युपकारा। बंदौ तव पद बारहिं बारा॥
पूरनकाम राम अनुरागी। तुमसम तात न कोउ बड़भागी॥

सन्तमहिमा

संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हकर करनी॥
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। परदुख द्रवहिं सुसंत पुनीता॥
जीवन जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद सब संशय गयऊ॥
जानेहु सदा मोहिं निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहै बिहंगवर॥

तासु चरन सिर नाइ कर, प्रेम सहित मतिधीर।
गरुड़ गयउ बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥
गिरिजा संतसमागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरिकृपा सो होइ नहिं, गावहिं वेद पुरान॥

कहेउं परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भवपासा॥
प्रनतकल्पतरु करुनापुंजा। उपजै प्रीति रामपदकंजा॥

मन-वच-कर्म--जनित अघ जाई । सुनै जो कथा श्रवन मन लाई ॥
तीर्थाटना साधन समुदाई । योग विराग ज्ञान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म व्रत दाना । संयम नियम यज्ञ तप नाना ॥
भूतदया द्विज--गुरु सेवकाई । विद्या--विनय—विवेक --बड़ाई ॥
जहं लगि साधन वेद बखानी । सबकर फल हरिभक्ति भवानी ॥
सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई । रामकृपा काहु एक पाई ॥

मुनिदुर्लभ हरिभक्ति नर, पावहिं विनहि प्रयास।
जो यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि विश्वास ॥

सो सर्वज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता । सोइ महिमंडन पंडित दाता ॥
धर्मपरायण सोइ कुलत्राता । रामचरन जाकर मन राता ॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना । श्रुतिसिद्धांत नीक तेहिं जाना ॥
सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा । जो छल छांड़ि भजै रघुवीरा ॥
धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी । धन्य सो देश जहां सुरसरी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निजधर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म द्विजभक्त अभंगा ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगतपूज्य सुपुनीत ।
श्रीरघुवीरपरायन, जेहि नर उपज विनीत ॥

मति अनरूप कथा मैं भाषी । यद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
जब मन प्रीति देखि अधिकाई । तब मैं रघुपति कथा सुनाई ॥
यह नहिं कहिय सठहिं हठसीलहिं । जो मन लाइ न सुन हरिलीलहिं ॥
कहिय न लोभिहिं क्रोधिहिं कामिहिं । जो न भजै सचराचर स्वामिहिं ॥

द्विज द्रोहिहिं न सुनाइअ कबहूं । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूं ॥
रामकथाके ते अधिकारी । जिनके सत्संगति अति प्यारी ॥
गुरुपद-प्रीति नीतिरत जोई । द्विजसेवक अधिकारी सोई ॥
ताकहं यह विशेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥

रामचरनरति जो चहैं, अथवा पदनिर्वान ।
भाव सहित सो यह कथा, करै श्रवनपुटपान ॥

रामकथा गिरिजा मैं बरनी । कलिमलसमन मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग सजीवनमूरी । रामकथा गावहिं श्रुति भूरी ॥
यहिमहं रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भक्ति केर पथ नाना ॥
अति हरिकृपा जाहि पर होई । पांव देइ यहि मारग सोई ॥
मनकामना सिद्धि नर पावै । जो यह कथा कपट तजि गावै ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥
सुनि सब कथा हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सोहाई ॥
नाथकृपा मम गतसंदेहा । रामचरन उपजेउ नव नेहा ॥

मैं कृतकृत्य भयउं अब, तव प्रसाद विश्वेस ।
उपजी रामभक्ति दृढ़, बीते सकल कलेस ॥

यह सुभ संभुउमा संवादा । सुखसंपादन समनविषादा ॥
भवभंजन गंजनसंदेहा । जनरंजन सज्जन प्रिय एहा ॥
राम उपासक जे जगमाहीं । यहिसम प्रिय तिन कहं कछु नाहीं ॥
रघुपति कृपा यथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥
यहि कलिकाल न साधन दूजा । योग यज्ञ जप व्रत तप पूजा ॥
रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं । संतत सुनिय रामगुनग्रामहिं ॥

जासु पतित पावन भगवाना । गावहिं कवि श्रुति संत पुराना ॥
जाहि भजिय तजि मन कुटिलाई । राम भजे गति केहिं नहिं पाई ॥

पाई न गति केहि पतितपावन राम भजु सुनु सठ मना ।
गनका अजामिल गृद्ध व्याध गजादि खल तारेउ घना ॥
आभीर यवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बार इक तेऽपि पावन होत राम नमामि ते ॥
रघुवंश-भूषन-चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं ॥
सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरहिं ।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुपति हरहिं ॥
सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथपर करु प्रीति जो ।
सो एक राम अकामहित निरबानपद सम आन को ॥
जाकी कृपा लवलेसते मतिमंद तुलसीदासहू ।
पायो परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहू ॥

मोसम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर ।
अस विचारि रघुवंशमनि, हरहु बिषम भवपीर ॥
कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥

उत्तरकाण्ड समाप्त

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
ुक्र	४	१६	शुक्र
क्रय	१२	६	केकय
गवानी	३०	२१	अगवानी और विवाह
द्वग	६५	५	उद्वेग
वारी	,,	१७	विचारी
रिस	८७	११	सरित
ारी	,,	१९	मारी
ा	,,	२२	देशू
र्म	१००	५	धर्म
वेक	,,	११	अनेक
ल	१०५	८	थल
दय	१२०	२०	हृदय
छिनमहि	१३५	७	लछिमनहिं
षत	,,	१९	भूषन
र	१३९	१७	नट
ाचत	१४८	११	नचावत
प	,,	२१	नृप
[illegible]	१६२	१२	कँर
रुण	१७२	१	तरुण
म	१७३	१४	दर्भ
ज	१७७	३	काम
ावहु	,,	९	आनहु
वलाना	१७८	१८	अकुलाना
हु	१७९	[illegible]	देह
लसूोया	१९९	५	कालवोया
वन	,,	२०	घाव न

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
विजय	२०३	१	विजय
प्रहतसु	२०६	७	प्रसुहत
ह.नूप	२०७	१०	अनेक
फाटा	,,	१४	फाट
मूधर	२०६	१३	भूध
पय.दहि	२११	११	पयादे
तबहीं	२१३	१२	संघहं
सुरेश	२२४	६	सुरेश रम
सूप·········संस्मृति	२३२	१२	सूप·········संस्मृ
असन्त	२३३	१७	असन्त
दुख	२३६	७	दुख
अभिनाना	२४४	३	अभिमान
माना	२४६	८	नाना
उठिन	,,	१८	कठिन
हितनकर	२५३	२१	तिनक
उधार	२५५	६	उधा
कठारित	,,	१५	कठोरि
प्रकष्ट	२५९	१६	प्रकृष्ट
रायाम्	,,	२०	नरायाम्
भक्ता	२६०	४	भक्त य
रहिरिकै	२६१	८	पहिरि
सोह	२६२	१	सा
भरन	२६४	१६	मर
डरपति रघुराया	२६६	१९	डरपति अतिमाय
सभर्थ	२६९	२०	समर्थ